

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186010

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ^R H50.5

^{PGH} Accession No. 3440

Author A31-

Title 21 Dec 11

This book should be returned on or before the date last marked below.

कोविद, राष्ट्रभाषा रत्न, प्रबोध, प्रवीण, विशारद,
विनीत, शिक्षक सनद, एस. एस. सी., आदि
परीक्षाओं की पाठ्य-पुस्तकों पर
महत्वपूर्ण मार्गदर्शक

हिन्दी शिक्षक

[मासिक]

हिन्दी प्रचारक और हिन्दी-शिक्षक मुफ्त ग्राहक
बन सकते हैं। इस सम्बन्ध में पूर्व
पत्र-व्यवहार कर लें।

विद्यार्थी शीघ्र ग्राहक हो जाएँ।

वार्षिक चन्दा ४)] [एक अंक ४० नये पैसे

पता :—हिन्दी-शिक्षक कार्यालय,

१२५, गिरगाँव रोड, बम्बई - ४

आधुनिक हिन्दी-साहित्य
रचनात्मक रूपों का एक और संकलन

“अभिजात”

सम्पादक :

हरिमोहन, रवीन्द्र भ्रमर

प्रकाशक :

- * साठ लेखकों की उत्कृष्ट रचनाओं का संकलन
- * नवीनता, प्रेरकता और उन्नयन का प्रतीक
- * कविता, कहानी, एकांकी, ललित लेख, स्केच,
संस्मरण—सब कुछ एक साथ

शीघ्र ही प्रकाशित हो रहा है

मूल्य दो रूपए मात्र

: व्यवस्थापक :

द, गुर्दु छात्रालय, बनारस

फोन न० १४२ [वसुधा]

साहित्यिक मासिक पत्रिका : रामनवमी अप्रैल से प्रकाशित
सम्पादक : रामेश्वर गुरु, हरिशंकर परसाई

परामर्श प्रता :

- पं० नंददुलारे बाजपेयी
- पं० भवानीप्रसाद तिवारी
- पं० भवानीप्रसाद मिश्र
- पं० मोहनलाल बाजपेयी

श्री अमृतगय

स्तम्भ : कविता, कहानी, निबन्ध, एकांकी।
प्रगतिशील पाश्चात्य-साहित्य पर प्रो० मोहनलाल बाजपेयी
की साहित्यिक डायरी। अमर साहित्यिकों की
जीवन-रेखाएँ। नए प्रश्न, मूल्यांकन,
तथा समालोचना के विशेष पृष्ठ।
पृष्ठ-संख्या ७२।

एक प्रति : १० आने * वार्षिक : ७ रूपए
पत्र-व्यवहार का पता :

वसुधा कार्यालय, दीक्षित पुरा,
जबलपुर (म० प्र०)

प्राचीन भारतीय संस्कृति का पोषक
हिन्दी का
एकमात्र पाक्षिक विचार-पत्र

‘सिद्धान्त’

प्रधान कार्यालय

‘वेगा तरंग, नगव’, काशी

शाखा कार्यालय

मदनकुटीर, सुभाष-मार्ग

लखनऊ

फोन नम्बर : ५८१

वार्षिक मूल्य ४)

* विशेष मूल्य १०)

दार्शनिक त्रैमासिक

सम्पादक :

यशदेव शन्य

वार्षिक मूल्य : ६ रुपए

अक्तूबर, १९५४ से प्रकाशित

उत्कृष्ट तथा विशाल आकार

के निबन्ध

सुन्दर कागज़, बढ़िया छपाई

प्रकाशक :

अ. भा. दर्शन परिषद्, फ़रीदकोट
(पेप्सू)

क्या आप अब तक.....

आपका-स्वास्थ्य

.....के ग्राहक नहीं बने हैं ?

‘आपका स्वास्थ्य’ : आपके और आपके परिवार के स्वास्थ्य का रत्न है ।

‘आपका स्वास्थ्य’ : आपका ज्ञान-वर्धन करता है ।

‘आपका स्वास्थ्य’ : आपको सभ्य जगत् की गति-विधि से परिचित कराता है ।

‘आपका स्वास्थ्य’ : स्वस्थ मनोरंजन भी करता है ।

‘आपका स्वास्थ्य’ : इण्डियन मेडिकल एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित हिन्दी में स्वास्थ्य पर एकमात्र प्रामाणिक पत्रिका है ।

शीघ्र ही ६ रुपए भेज कर ग्राहक बनिज—

वी. पी. भेजने का नियम नहीं है । नमूने के लिए
आठ आने का टिकट भेजिए ।

व्यवस्थापक, ‘आपका स्वास्थ्य’, बनारस—१

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी के आर्थिक, राजनीतिक
अनुसंधान-विभाग का पालिक पत्र ।

आर्थिक समीक्षा

प्रधान सम्पादक : श्री आचार्य श्रीमन्नारायण अग्रवाल

सम्पादक : श्री हर्षदेव मालवीय

हिन्दी में अनूठा प्रयास :

आर्थिक विषयों पर विचारपूर्ण लेख

आर्थिक सूचनाओं से श्रोत-प्रोत

भारत के विकास में रुचि रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए

अत्यावश्यक तथा पुस्तकालयों के लिए

अनिवार्य रूप से आवश्यक ।

वार्षिक चन्दा : ५ रुपए : एक प्रति का १६ न.पै.

व्यवस्थापक, प्रकाशन-विभाग

अखिल भारतीय काँग्रेस कमेटी

७, जन्तर-मन्तर रोड, नई दिल्ली.

कई गण्य-मान्य साहित्यकार तथा पत्र-पत्रिकाओं से प्रशंसित, कर्नाटक की कला, साहित्य एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाली एकमात्र हिन्दी मासिक

भारतवाणी

सम्पादक :

श्रीकण्ठमूर्ति, एम. ए.

७

वार्षिक चन्दा ४)]

[एक प्रति ३७ नये पैसे

पता :—व्यवस्थापक, ‘भारतवाणी’

पोस्ट बाक्स नम्बर—१२

धारवाड़, मैसूर-राज्य

पश्चिमोत्तर भारत की सुप्रसिद्ध हिन्दी मासिक पत्रिका

—: विश्वज्योति —:

का
वार्षिक-अंक

२८ फरवरी ५८ को प्रकाशित होगा

इस विशेषांक में संस्कृति, कला, दर्शन, इतिहास, पुरातत्व आदि से सम्बन्धित विषयों पर विशिष्ट विद्वानों के लेख, कविता, कहानी, रूपक एवं एकांकी होंगे और साथ ही अनेक इकरंग-बहुरंग भावपूर्ण एवं आकर्षक चित्र भी। 'विश्वज्योति' प्रायः सभी सरकारी द्वारा स्कूलों, कालेजों तथा पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत है।

'वार्षिक' अंक का मूल्य १।।) होगा, किन्तु वार्षिक चन्दा ८ रु. भेज कर 'विश्वज्योति' के ग्राहक (या १० रु. भेज कर विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान के वार्षिक सदस्य) बन जाने पर उसका अतिरिक्त मूल्य नहीं लिया जाएगा। विज्ञापन-दाताओं और एजेंटों के लिए भी यह एक सुन्दर अवसर है।

पत्र-व्यवहार के लिए पता :

व्यवस्थापक : "विश्वज्योति"
पोस्ट साधु आश्रम, होशियारपुर (पंजाब)

खरीदने, पढ़ने और सँजोकर रखने योग्य

‘साहित्यकार’

साहित्यकार-संसद प्रयाग का मुख-पत्र
श्रेष्ठ साहित्य का प्रतिनिधि मासिक

संपादक

महादेवी : ० : इलाचन्द्र जोशी

- * हमारा यह दावा है कि एक बार पढ़ कर आप हमें सा के लिए 'साहित्यकार' के पाठक बन जाएंगे !
- * हिन्दी के श्रेष्ठतम साहित्यकारों का सक्रिय सहयोग इसे प्राप्त है !!
- * साहित्यकारों द्वारा संचालित, संपादित एवं प्रकाशित अपने ढंग का अकेला और पहला मासिक !!!

वार्षिक शुल्क १०) एक प्रति १)

कार्यालय

साहित्यकार-संसद,

५८, रसूलाबाद, इलाहाबाद

पिछले ६ वर्षों से भारत के प्राचीन साहित्यिक
केन्द्र धार से प्रकाशित आधुनिक आकर्षण
के आवरण में भारतीय सभ्यता का

संदेश-वाहक

सचित्र मासिक

ऊषा

● जिसके सुचित्रपूर्ण साहित्य की सभी प्रशंसा करते हैं।

● कालेज लायब्रेरियों तथा सार्वजनिक वाचनालयों में जिसे लोग पढ़ने जाते हैं।

देश के सभी रेलवे बुक स्टालों पर भी मिलती है

वार्षिक ४) :: एक प्रति ३५ नये पैसे

व्यवस्थापक : भोज प्रकाशन, धार
(मध्य प्रदेश)

हिन्दी की प्रतिनिधि साहित्यिक पत्रिका

युग-चेतना

सम्पादक-समिति

प्रतापनारायण टण्डन

डा० देवराज

कुँअर नारायण

कृष्ण नारायण कक्कड

जनवरी '५५ से प्रकाशित हो रही है

इसका प्रत्येक अङ्क स्थायी साहित्य की कोटि का होने से संग्रहणीय होता है।

वार्षिक शुल्क ८), अर्ध वार्षिक ४),
एक प्रति ७५ नए पैसे

‘युग-चेतना’ कार्यालय,
प्रेम प्रिंटिंग प्रेस, गोलगंज, लखनऊ

हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

१. **दक्खिनी का पद्य और गद्य** : ब्रज, अवधी और राजस्थानी आदि की तरह दक्खिनी भी हिन्दी की एक विशेष शैली है। खड़ी बोली के लिए इस शैली का विशेष महत्त्व है। दक्खिनी ने ही खसरो और कबीर की परम्परा को आगे बढ़ाया है। हिन्दी-खड़ी बोली के गद्य का सब से पुराना नमूना दक्खिनी में ही मिलता है। संकलन में लगभग सौ लेखकों की अप्रकाशित रचनाओं का संग्रह है। यह संकलन १२ वीं शती से १९ वीं शती तक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में एक नई कड़ी जोड़ने वाला है। पुस्तक की भूमिका भाषा-विज्ञान के प्रसिद्ध विद्वान् डाक्टर मुनीनिबुल्ला चटर्जी ने लिखी है। संकलन-कर्ता हैं, श्रीराम शर्मा। पृष्ठ-संख्या लगभग छः सौ। मूल्य १०५०।

२. **पञ्चामृत (तेलुगु)** : तेलुगु के पाँच प्रतिनिधि-महाकवियों का परिचय तथा उनकी उत्कृष्ट रचनाओं को नागरी लिपि में देकर, हिन्दी-अर्थ दिया गया है। इस पुस्तक द्वारा हिन्दी-भाषी लोग तेलुगु के काव्य का आनन्द ले सकते हैं। लेखक तथा अनुवादक श्री बालशौरि रेड्डी। मूल्य ४०००

३. **सबरस** : गोलकुण्डा के विद्वान् लेखक वजही की दक्खिनी शैली में लिखी गई हिन्दी गद्य की सबसे पहली और उत्कृष्ट रचना। शब्दों के लिए विस्तृत टिप्पणी और विवेचनापूर्ण भूमिका। यह पुस्तक आज से चार सौ वर्ष पहले लिखी गई थी। प्रस्तुतकर्ता— श्रीराम शर्मा। पृष्ठ-संख्या लगभग २५०, डेमी साइज़। मूल्य ६०००।

४. **मुहावरा कोश** : पृष्ठ-संख्या २९८। रघुवीरशरण एम. ए., प्राध्यापक जैन कालेज, मद्रास, तथा श्रीराम गुप्त, बी. ए. प्राध्यापक विजय कालेज बीजापुर। मूल्य ३०००।

५. **चाबुक** : (कहानी-संग्रह) : श्री विनायकगव 'विद्यालंकार' की कहानियों का संकलन। प्रत्येक कहानी समाज की वर्तमान बुराइयों पर तीखा व्यंग्य लिए हुए है। इस कहानी-संग्रह ने हिन्दी के कथा-साहित्य की श्रीवृद्धि की है। कहानियों में हैदराबाद और उसके आसपास का जीवन अंकित हुआ है। क्रौन ५६, पृष्ठ-संख्या १३९। मूल्य सजिल्द १-७५।

६. **मीरा** : (तेलुगु) : लेखक रामचन्द्र कौण्डिन्य। मीरा के हिन्दी पद्यों का तेलुगु अनुवाद। मूल्य १-२५।

७. **तुलसीदास** : गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर लिखा गया रंगमंच के उपयुक्त नाटक। मूल्य १-१२।

८. **शकुन्तला-ए-ट्रेजडी (एण्ड अंदर एसेज़)** : श्री वंशीधर विद्यालङ्कार। मूल्य ४०००।

व्यवस्थापक :—पुस्तक-विक्रय-विभाग, हिन्दी प्रचार

के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

बाल-साहित्य-माला

बाल-साहित्य-माला के अन्तर्गत सभा ने निम्न सात पुस्तकें प्रकाशित की हैं। अठपेजी काउन् साइज, मचित्र छपाई। आकर्षक मुखपृष्ठ।

१. बालपद : ७ से १० वर्ष तक के बालकों के लिए कविताएं। कविवर आचार्य वंशीधर 'विद्यालंकार'। ०५०

२. गाँवों की कहानियाँ : उत्तर भारत के गाँवों में कही जानेवाली आकर्षक कहानियाँ लेखक—पं० रामनिरंजन पाण्डेय एम. ए., पी. एच. डी.। ०५०

३. दक्षिण के महापुरुष भाग १ : दक्षिण के ५ महापुरुषों का जीवन-चरित्र लेखक—श्री राजकिशोर पाण्डेय एम. ए., पी. एच. डी.। ०५०

४. बालकों की कहानियाँ : बच्चों के लिए मनोरंजक कहानियाँ। लेखक श्रीराम शर्मा। ०५०

५. दो एकांकी : ७ से १० वर्ष तक की आयु के बालकों के खेलने के लिए प्रभावशाली दो एकांकी। लेखिका श्री विमला लूथरा एम. ए.। ०५०

६. हैदराबाद के ऐतिहासिक और कला-स्थल : अजन्ता से लेकर हैदराबाद के चारमीनार तक का परिचय इस पुस्तक में मिलेगा। लेखिका श्री कमला रानी संधी। ०५०

दक्षिण के महापुरुष भाग २ : लेखिका श्री विमला लूथरा। ०३७

हैदराबाद सरकार द्वारा पाठ्यक्रम में स्वीकृत पुस्तकें

१. हिन्दी बोध प्रवेशिका	०६२	१२. रचना बोध भाग १	०३१
२. हिन्दी बोध भाग १	०५०	१३. रचना बोध भाग २	०१६
३. हिन्दी बोध भाग २	०६२	१४. इतिहास की कहानियाँ भाग १	०५०
४. हिन्दी बोध भाग ३	०७५	१५. इतिहास की कहानियाँ भाग २	०७५
५. हिन्दी बोध भाग ४	०८७	१६. विज्ञान सोपान भाग १	०६२
६. गद्यसोपान भाग २	१००	१७. विज्ञान सोपान भाग २	०७५
७. सरल गणित भाग २	०६२	१८. चार एकांकी	०७५
८. सरल गणित भाग ३	०७५	१९. मणियाँ	०६२
९. पद्य पारिजात भाग १	०७५	२०. सरल व्याकरण भाग १ (महाराष्ट्र के लिए)	०६२
१०. पद्य पारिजात भाग २	१३१	२१. कहानी-संग्रह	११२
११. कथाकुञ्ज भाग १	१५०	२२. सरल भूगोल	१००

सभी पुस्तकों पर उचित कमीशन दिया जाता है। पत्र-व्यवहार निम्न पते पर कीजिए :

सभा, नामपल्ली स्टेशन रोड, हैदराबाद—१

‘अजन्ता’
की
परामर्श-समिति

श्री बनारसीदास चतुर्वेदी
एम. पी, नई दिल्ली

श्री विनायकराव विद्यालङ्कार, एम. पी.
मुकर्रमचाही मार्केट, हैदराबाद-द.

डा० भगवतशरण उपाध्याय
४-ए, थार्न हिल रोड,
इलाहाबाद.

श्री लक्ष्मीनारायण गुप्त
सचिव चिकित्सा-विभाग, हैदराबाद-द.

श्री विश्वनाथ मुखर्जी
प्रिन्सिपल, कालेज ऑफ़ आर्ट्स, हैदराबाद-द.

डा० श्रीनिवासाचार्य
डाइरेक्टर, पुरातत्त्व-विभाग, हैदराबाद-द.

श्री युद्धवीर
संचालक, दैनिक उर्दू व हिन्दी ‘मिलाप’ हैदराबाद

समुद्र-फेन

कु. रमा सिंह की प्रतीक कविताओं
और
गीतों का संग्रह

प्रकाशक
उदय प्रकाशन, सिंहलाज
हसनगंज, लखनऊ.

मूल्य : ३ रुपये

अज्ञान

सचित्र मासिक पत्रिका

वर्ष ६

दिसम्बर, १९५७

अङ्क १२

सम्पादक

वंशीधर विद्यालंकार, विद्यामार्तण्ड

संचालक

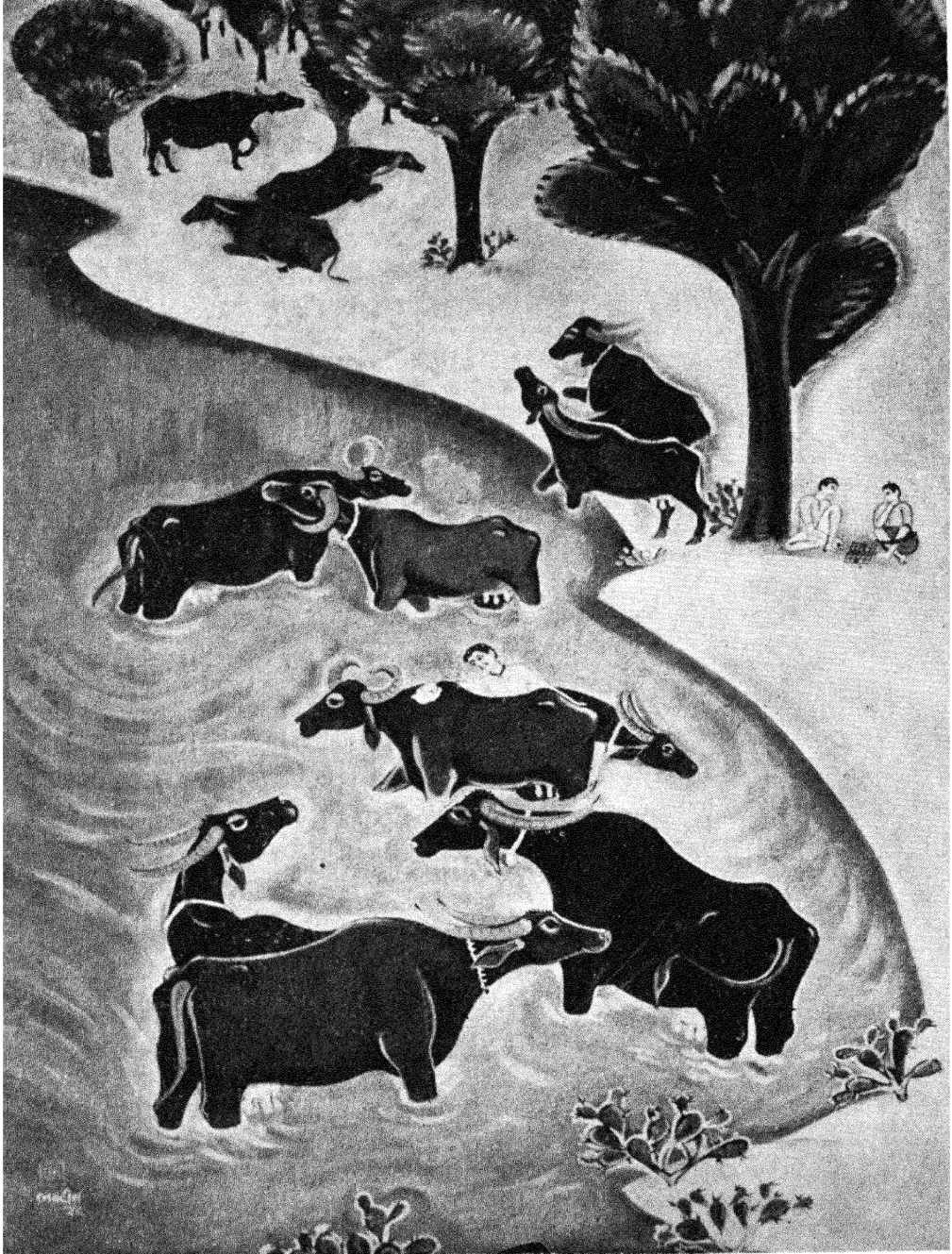
हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद-दक्षिण

सौराष्ट्र, बम्बई, बिहार, राजस्थान, पंजाब, मध्य-प्रदेश, आन्ध्र-प्रदेश,
त्रावणकोर और मद्रास राज्यों के शिक्षा विभाग द्वारा स्वीकृत

अनुक्रम

गीत	विमाता	
अ नन्दकिशोर 'नवल'	१ तिलक	३७
गीत आनन्द मिश्र	२ लाल किले का अन्तिम मन्त्र	४०
द गीत चक्रधर 'नलिन'	३ हरिकृष्ण देवमरे	४६
मन्त्रुरों का संगीत	४ में डाकू कैसे बन गया था ?	४८
अ डा० महेन्द्र भटनागर	५ रामराज सिंह	५२
चन्द्र-दर्शन	६ हिन्दी का व्यर्थ विरोध	५७
भागवतप्रसाद सिंह	७ एक प्राध्यापक	६०
पाठक वेला	८ भील के कमल	
विद्यानन्द 'राजीव'	९ मलयज	
वैद की खुशबू भरे ओ बादलों के फूल	१० 'कीर-संदेशु' : तेलुगु का एक दूत-काव्य	
देवनाथ पाण्डेय 'रमाल'	११ जे. बी. भीमसेन 'निर्मल'	
पहरा	१२ कला-चर्चा	
कमलप्रसाद 'कमल'	१३ मध्ययुगीन चित्र-शैलियों में राधा	
यूरोप का यथार्थवाद	१४ टी. व्ही. चौहान और उनकी कला	
जे. डी. गोषलेकर	१५ चिट्ठी-पत्री	
कवि ईश्वरदास की दो अन्य रचनाएँ	१६ भगवान सहाय त्रिवेदी, भागवत पाण्डेय, 'सुधाशु',	
शिवगोपाल मिश्र	१७ चिदानन्द शर्मा, परदेशी, बेचन, राजेन्द्र बहादुर	
पंजाब-कैमरी लाला लाजपतगय	१८ सिंह, दर्पनाथ, अग्रचन्द्र नाहटा	
सुभद्रा देवी	१९ नीर-क्षीर	
प्राचीन वेप-जीवन का प्रियपात्र विट	२० उर्दू-साहित्य का इतिहास, राजनीति शास्त्र के मूल	
जगन्नाथ पाठक	२१ सिद्धान्त, धुएँ और लकीरें : वंशीधर विद्यालंकार,	
कथा साहित्य में जीवन-दर्शन	२२ नाना फ़नवीस : कुन्तल मेघ	
डा. महेन्द्र भटनागर	२३ सामयिक	
मध में एक प्राण	२४ कोणार्क का मन्दिर : उड़ीसा के महान् वैभव का	
विष्णु प्रभाकर	२५ प्रतीक; गुजराती में विदेशी भाषाओं के शब्द	
जर्मन साहित्य की वीर गाथाएँ	२६ सम्पादकीय	
प्रेमकिशोर ऐस्मादपुरी	२७ वंशीधर विद्यालंकार	

चित्र : बैसों का स्नान (तेलचित्र) चित्रकार : जगदीश मित्तल



भैरों का स्नान (वैल-चित्र)

चित्रकार : जगदीश भिल्ल
१-२-२१३ गगनमहल रोड,
हैदराबाद-दक्षिण



वर्ष ६

दिसम्बर, १९५७

अंक १२

गीत

मेरे मन को हलका कर दो ।

भरा हुआ प्याली का प्याला
जिसमें लहराती है हाला
छनक उठूँ मैं मपना बन कर, तुम यदि दलकी-सी ठोकर दो ।

बिछी हुई मन की पाषाणी
अकुलाई है—'पानी-पानी'
जीवन फूट पड़े, उस थल यदि अपने अरुण-चरण तुम धर दो ।

थका एक रस गाते-गाते
एक राग को ही दुहराते
यति पाए भंकार, अगर तुम गति में साँसों का सम भर दो ।।

३८, मिन्टो बाग़ाबास,
पटना—५

—लक्ष्मिकानोर 'नवज'

गीत

आज न टोको, हाथ न रोको,

जी भर पी लेने दो साक़ी

१

३

जीवन-संघर्षों ने मेरा
 दीवानापन छीन लिया है
 वह घर-आँगन छीन लिया है
 वह भावुक मन छीन लिया है
 इन्द्र-धनुष के जिन रंगों से
 मैं जीवन के चित्र बनाता
 वह मन का धन छीन लिया है
 रसवाला धन छीन लिखा है
 भरा नहीं जो वह क्या छलकै
 घट भर भी लेने दो साक़ी
 आज न टोको, हाथ न रोको
 जी भर पी लेने दो साक़ी

आज बहुत दिन बाद तुम्हारे
 दरवाज़े तक आ पाया हूँ
 देखो कितनी प्यास प्राण के
 घट में संचित कर लाया हूँ
 और आज के बिछुड़े जाने
 मिल पाएँ, मिल भी न सकें हम
 मैं एकाकी, यह लम्बा पथ
 पग डगमग हैं घबराया हूँ
 हो जितनी बारूणी, पिला दो
 बूँद नहीं रह जाए बाकी
 आज न टोको, हाथ न रोको
 जी भर पी लेने दो साक़ी

२

४

वह मस्ती, कैसी मस्ती थी
 मैं ज़िम्मे डूबा गाता था
 तुम प्याला भर-भर लाते थे
 मैं ख़ाली करता जाता था
 प्यास नहीं रुकती थी मेरी
 हाथ नहीं थकते थे तेरे
 हम मदहोश बहे जाते थे
 सुख का सागर लहराता था
 जीने को, अब भी जीवित हूँ
 लेकिन जैसे घायल-पाखी
 आज न टोको, हाथ न रोको
 जी भर पी लेने दो साक़ी

यह मदिरा अनमोल प्यार की
 पी ज़िम्मे वह पार हो गया
 पी न सका जो कण भी, उसको
 यह जग-जीवन भार हो गया
 यह मदिरा पीकर कलियों में
 वे देखो, भौरे जीते हैं
 मैं जीवित हूँ पर जैसे मृत
 वह मेरा संसार खो गया
 फिर जी लूँ मैं फिर पी लूँ मैं
 फिर मज ले जीवन की भाँकी
 आज न टोको, हाथ न रोको
 जी भर पी लेने दो साक़ी

गीत

स्वर आज मधुरतम बोल-बोल
 बनता जीवन जाता अमोल
 में दीप योजता हूँ ऐसा जो कभी नहीं उगले काजल !

बनते प्रिय जाते आज अधर
 हैं मन दर्शाते मन के स्वर
 आशाओं से संकेत-भरा आमन्त्रण दे जाता बादल !

सुन स्वर गमका है नभमण्डल
 फीका-मा लगता स्वर कोयल
 भर दो मधुमय तुम स्रोत आज जिसका उर हो तुम से घायल !

रुक गई बड़ी जाती नदिया
 चल पड़ी सभी पीछे दुनिया
 मैं पवन चाहता एक चले जो हर ऋतु में बन कर शीतल !

१. मच्छरों का संगीत

हर रोज रात होते ही
 अनगिनती सूक मच्छरों का गमवेत-गान
 कमरे में गूँज-गूँज उठता है !
 जिममें नदी तानक भी
 भाव-कल्पना का वैभव
 केवल बजता रव, रव, रव !
 निद्रा उचटा देने वाली
 यह कैसी लोरी ?
 यह कैसा मरगम ?
 अच्छा हो
 यदि इस पर बरसे
 डी. डी. टी.
 भग्यम-भूमफम-भग्यम !

२. भूमिका

सुनहरी फमल के लिए
 रसभरी गजल के लिए
 हृदय-भूमि को खींचना !

प्रिय अमिय-धरों के लिए
 मधुरतम स्वरों के लिए
 हृदय-नार को खींचना !

चन्द्र-दर्शन

धुँधला-धुँधला-मा चाँद नजर आता है !

ज्यों शीशे पर पुत गई रोशनाई हो
या सुरगंगा में प्रबल बाढ़ आई हो
हों तैर रहे जिसकी लहरों पर शत-शत—
बादल के दल श्यामल-श्यामल पर्वतवत

क्रम-क्रम से करता पार, डूब उतराता
कैसे का औंधा थाल बढ़ा जाता है !
गीला-गीला-सा चाँद नजर आता है !

है आज रास का साज सजा सावन में
भू का वृन्दावन चित्रित गगनांगन में
हैं सघन नीप-कुंजों में, यमुना-तट पर
ब्रज-बालाओं के संग प्रणय-रत नटवर

राधा-रानी के उज्ज्वल मुख-दर्पण पर
अद्भुत आभामय कृष्णरूप छाता है !
नीला-नीला-सा चाँद नजर आता है !

युग बीत गए कितने, पर याद कहानी
किस भौंति हुई लांछिता कभी पाषाणी
गौतम के व्याघ्राम्बर की चोट न भुलती
मुख की कलंक-कालिमा कभी न धुलती

चलता नक्काब से ढँक कर अपराधी ज्यों
त्यो शशि घन में छिपता है, शर्माता है !
काला-काला-मा चाँद नजर आता है !!

पावस-बेला

नैसर्गिक पुलकन है
बेला की पंखुरियों भ्रूम रही हैं
भ्रूल रही है, कोई बदली
गगन -- हिंडोले
जिमका हर्षोल्लास
फुहारें बन कर, बरस रहा रिमक्तिम
परम रहा है
वल्लरियों के तपे हुए तन ।

नैसर्गिक चितवन है
भ्रुमुट की ऊँची वातायन से
मंगल-स्वर साधती मयूरी,
उन्मादिनि-सी
जिमे श्रवणा कर
मन-मिलिन्द मुखरित हो उठता
अनजाने ही सध जाते हैं, तार बीन के
और उदधि अन्तस् का
आलोडित हो उठनी
जिसमें अरमानों की कितनी ही नौकाएँ
तट के लिए भटकने लगतीं

ज्ञात नहीं ऐसे सुयोग में
तुम कैसे बैठी हो उन्मन
उलझ गए हैं नयन किसी
अज्ञात दिशा में
शायद किसी सुपरिचित का प्रतिबिम्ब
सँजोए, आ पहुँची घनमाला तुम तक
शुभे, कि जिसमें तन्मय हो कर,
इस धरती से बहुत दूर स्वर्गीय लोक में
जा बैठा हो मन का कागा

में अब जाना
दर्द बन गया तुम्हें
तुम्हारा स्नेह-प्रवासी, अन्तश्चक्षु खुले हैं
जिसके लिए तुम्हारे
प्राणों में शत दीप जलाए, आशाओं के
देख रही हो पथ आगत का
भूल गई हो, तन की सुधि
जग-जीवन की सुधि
क्योंकि इन क्षणों, तुम वैरागिनि
इस दुनिया से बहुत दूर हो ।

बूँद की खुशबू भरे ओ बादलों के फूल !

बूँद की खुशबू भरे ओ बादलों के फूल
खिलते आ
निखरते जा ! नीले बादलों के फूल !!

श्याम जूड़े में सजाती सजल बरखा गैँथ
घटा-घूँघट में गया खिल दूधिया शशिरूप
लाजवन्ती मुसकराई दामिनी दमकी
अनोखा रंग-अंग खुल-खुल कहीं जाता खूब
मन्द पुरवा संग हौले तुम नदी के कूल
तिरते आ
लहरते जा ! नीले बादलों के फूल !!

तुम्हारा पी रिमकिमी मकरन्द मधु बन ठन
धरा की राधा चली है आज वृन्दावन
पपीहा गा उठा कोयला है सुनाती कूक
लहर वंशी बज रही यमुना-पुलिन पल छिन
बावरी यौवन-गली में भटकती है भूल
भरते आ
उभरते जा ! नीले बादलों के फूल !!

जिन नयन में लगे काजल साँवरे घन फूल
उन नयन में तुम रहे हो स्वप्न-दोले भूल
आज गदराया कदम्बी मन तुम्हें चाहे
रजत फूही गन्ध जूही की रही भर धूल
प्रणय-जीरे भरे तुम अनुराग ही आमूल
खुलते आ
सँवरते जा ! नीले बादलों के फूल !!

पहरा

आज सखी, स्वर पर पहरा है
 पूछ घुटे गीतों से मेरे, कितना तेरा दुख गहरा है ।

नज़रों के पग में जंजीरें, बेड़ी आहों के पाँवों में
 मन की टीसों दफ़न पड़ी हैं, कब से इन रिसते घावों में
 अब तक मेरे मूक रुदन को
 सुन न सका यह जग बहरा है

मेरा दर्द नहीं आँसू में, जो जग के आगे छलका दूँ
 जिनमें तेरा प्यार—उन्हें मैं कैसे पलकों से ढलका दूँ
 सीम पटकता नयन-देहरी पर दुख का सागर ठहरा है
 आज सखी, स्वर पर पहरा है

यूरोप का यथार्थवाद

प्रस्तुत लेख में हम चित्रकला की पश्चिमी शैली के एक खण्ड, यथार्थवाद की विवेचना करेंगे। शिल्प-साधना और कला-सम्बन्धी इतिहास के विद्यार्थी और सुधीजन इस बात से भली-भाँति परिचित होंगे कि शिल्पविज्ञों और सर्जकों ने शैली को, स्थान और पुरुष से सम्बन्धित यह विभाजन, संकेत और सुविधा की दृष्टि से किया है। इन संकेतों द्वारा वे यह कदापि स्पष्ट नहीं करते कि एक निश्चित काल में विशेष कला ही प्रयोग में रही और शेष प्रकार की कला का कोई अस्तित्व ही न था। यह संकेत-प्रणाली सम्पूर्णतः उचित नहीं है तथापि साधारण व्यक्ति को कला-तत्वों के परिचय और ज्ञान के लिए यथार्थवाद सब से सरल और स्पष्ट विधि है। इसी दृष्टिकोण को सामने रखते हुए इस विषय की चर्चा करेंगे।

प्रकृतिवाद को ध्यान में रख कर ही यथार्थवाद की विवेचना सुसंगत होगी। परस्पर इन दोनों ही प्रकारों में हम भ्रान्ति करते हैं। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के अतिरिक्त चित्रकार इसके लिए भी चेष्टाशील रहता है कि कला-जिज्ञासु, रमज्ञ और यथार्थता सम्बन्धी उसके विचार को समझें। पूर्व और पश्चिम दोनों देश के चित्रकारों ने यह साधना की है। उनकी कला में प्रतीकवाद का चित्रण हो अथवा प्रकृतिवाद की अभिव्यंजना किन्तु यथार्थता-सिद्धि ही उनका परम लक्ष्य होती है। सामान्यतः यह धारणा प्रचलित है कि पश्चिमी चित्रकारों ने अपने चित्रों में दृश्य-जगत को अभिव्यंजित किया है और पूर्वी चित्रकारों की भाँति उन्होंने प्रतीकवादी रूप-विधान को अव्यवस्थापन में स्वीकार किया। अतः यह स्पष्ट है कि पश्चात्य चित्रकारों ने प्रतीकवादी प्रतिनिधि चित्रों के निर्माण में अपने कौशल और क्षमता का कम उपयोग किया और उनके अधिकांश प्रयत्न प्रकृतिवादी प्रतिनिधि चित्रों को चित्रित करने में ही हुए। इन विभिन्नता के मूल कारणों में सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक विकास की असमानताएँ थीं। यह सत्य है कि कला और चित्रकार का सम्बन्ध स्व-केन्द्रित ही नहीं है, उसकी कला पर आसपास के वातावरण और परि-

स्थितियों की गहरी छाप होती है। परिस्थिति के परिपार्श्व से कला को विज्ञापन कर देना मानो उसे निष्पाण कर देना है। इस सम्बन्ध में एक बड़ी सुन्दर घटना है : “एक बार किसी चित्रकार को एक चित्र बनाने के लिए एक व्यक्ति ने आदेश दिया। चित्र तैयार होने के पश्चात् जब उस व्यक्ति ने उसे देखा तो बड़ा असंतुष्ट हुआ, वह क्योंकि उसमें उसका रूप भिन्न था। किन्तु कलात्मक मूल्य की दृष्टि से इस चित्रकार ने संसार को एक अनुपम चीज दी थी।” इस सम्बन्ध में एक दूसरा महत्वपूर्ण प्रसंग भी है। चित्रकार रेम्ब्राँ से एक बार कैप्टन बेनिंगवाक और उसके मित्रों ने एक समूह-चित्र बनाने के लिए कहा, जिसमें उन सबको बराबर महत्व दिया जाए। किन्तु चित्र तैयार होने के बाद वह उनकी इच्छा के प्रतिकूल निकला। चित्रकार ने केवल प्रकाशावरोह और छाया के आधार पर इन व्यक्तियों को चित्रित किया था। ‘नाइट-वाच’ के नाम से यह चित्र प्रसिद्ध है। वास्तव में इसका कारण यह था कि चित्र को व्यंजित करने समय, इनमें से कुछ व्यक्ति पारंपार्य में आ गए थे और उनकी मुख-छाँव यथावत चित्रित न हो पाई थी। किन्तु एक महासत्य भी इससे निरूपित हुआ कि चित्रों में सर्वथा उनकी दृष्टि-दृश्य-अनुभूति की ओर रहती है और वही अभिव्यंजना क्षमता का महान् कोष है। महान् शिल्पी माइकिल एंजेलो के ऊपर भी यही दोषारोपण किया गया था। आलोचकों का कथन था कि लारेंजो और गुलेनियो की मूर्तियाँ अवास्तविक हैं और यथानुरूप उनका चित्रण नहीं किया गया। एंजेलो का कथन था कि भविष्य में कला-साधकों और जिज्ञासुओं के लिए व्यक्तियों के नाम और उनकी बाह्यकृति की अपेक्षा कला का आंतरिक मूल्य अधिक महत्वपूर्ण होगा और स्थूल आकृति का मोह वे त्याग देंगे। यद्यपि उनका यह उत्तर कला-संरक्षक पोप क्लिमेंट सप्तम को संतोष प्रदान न कर सका। आधुनिक चित्रकार संग्रहता के बोझ से मुक्त होकर अपनी कला-साधना करते हैं और आधुनिक युग में मुक्त अभिव्यक्ति का यही सबसे बड़ा स्फूर्ति-करण है।

यह बात अब अत्यन्त स्पष्ट है कि समस्त वास्तव प्रभावों को छोड़ कर चित्रात्मक अभिव्यञ्जना में चित्रकार के विचार की स्थापना ही अभिव्यञ्जना है। यथार्थवादी कल्पना विचार के आधार की सृष्टि ही उसका मूल उद्देश्य है, प्रमुख वास्तविकता है भले ही उसकी बाह्यकृति एकाधिक बार परिवर्तित होती रहे।

पाश्चात्य कला में यथार्थवाद की प्रवृत्ति की चर्चा अत्यन्त मनोरंजक है। यूरोप के अति प्रारंभिक चित्रकारों को लीजिए, अलतमोरा आदि गुफाओं के पशु-चित्र जिसके उदाहरण हैं। इन चित्रों के पीछे उस प्रारंभिक चित्रकार की सजीव अनुभूतियाँ हैं, चमत्कारिक-वृत्ति के प्रति उसका उत्कट विश्वास है, विस्मय और कुतूहल है। पर इसके अतिरिक्त वस्तुस्थिति की, यथार्थता की संप्राप्त अभिव्यञ्जना भी है। यह कहानी उस आदिम चित्रकार की शिकाय-वृत्ति, पशुओं की निकट-सम्पर्कता की अनूठी तस्वीर है। उनका रंग और आकार का परिवेश अतिसाधारण रीति से हुआ है। पर यथार्थता की चित्रित करना ही उनका उद्देश्य था।

ईजिप्त की कला-विवेचना भी अत्यन्त मनोरंजक है। धर्म और रुढ़ियों से प्रस्त होने पर भी ईजिप्शियन चित्रकारों ने मानवीय चित्र-अभिव्यक्ति में बड़ी गम्भीरता और दिलचस्पी प्रकट की है। यथार्थवाद ही संसार में कला की मूल-प्रेरणा रही है। उभयुक्त दोनों ही प्रकार यथार्थता से परिपोषित हैं। किटियन चित्रकला ईजिप्त और ग्रीक की चित्रकला को जोड़ने वाली कड़ी है, किन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक अध्ययन के लिए उसके किसी प्रकार के अवशिष्ट उपलब्ध नहीं हुए।

ग्रीक-चित्रकला भी केवल मानवीय नामों और घटनाओं के रूप में ही हमारे बीच है। जो कुछ सामग्री आज उपलब्ध है, उससे हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि वे कृत्रिमता का निर्माण कर वास्तविकता को छिपाते थे। ये समस्त काल्पनिक कथाएँ जीव-जगत् पशु-पक्षियों से सम्बन्धित हैं। ग्रीक-कला को समझने के पूर्व हमें उसके शिल्पकला से भली-भाँति अवगत होना चाहिए। वास्तव में ग्रीक चित्रकला की प्रारंभिक सीढ़ी यही है और यही से हम उसके विकास के कुछ संकेत पा सकते हैं। उनका शिल्प इन पशु-कथाओं का समर्थन करता है, क्योंकि वे चित्रित वस्तु के जड़गत यथार्थ या प्रकृतिकवाद से दूर हैं।

रोम निवासी कला में ग्रीक निवासियों का अनुकरण करते थे। चित्रकला में भी वे उनके अनुयायी थे। पापेली इत्यादि के भित्ति-चित्रों को छोड़ कर इनके अब बहुत कम नमूने शेष हैं। इन चित्रों में भी हमें यथार्थवाद की स्पष्ट झलक मिलती है और तत्कालीन रोमन समाज के जीवन को ये यथारूप प्रतिबिम्बित करते हैं।

इसके पश्चात् नई चित्र-कला के क्षेत्र में हम प्रवेश करते हैं। दृश्यगत यथार्थवाद की अपेक्षा इनमें प्रतीकवाद की सूक्ष्म अभिव्यञ्जना हुई है, अपने नए विश्वास को दृढ़ बनाने के लिए ईसाइयत को अपने उद्देश्य के प्रकार के लिए गोपनीयता का आश्रय लेना पड़ा। प्रारंभिक ईसाईकला में प्रतीक-चित्रों की अमिसृष्टि का यह मूल कारण था। बेजेन्टाइन-कला से भी इसका सम्बन्ध बड़ा घनिष्ट है।

यह संकीर्ण परम्परा यथार्थवाद के प्रमुख संचालक जिओतो के आगमन पूर्व तक चली। अल्पवयी मैशेसियो के प्रत्येक चित्र में यथार्थवाद की सृष्टि हुई है। जागरण-काल-ज्ञान के भव क्षेत्रों में अनुसंधान और शोध का युग था और हमारे बीच पालो-मेलो, पिरोक्ला फॉसिसिया जैसे उच्च कलाकार अधिक हैं जिन्होंने दृष्टि और उसकी विशिष्टताओं को अपने अध्ययन का क्षेत्र बनाया था।

शरीर-रचना, रंग और अन्य विधान उनके अनुसंधान के विषय थे। इन सिद्धान्तों और कार्यों की पराकाष्ठा हम रैफेल, लिओनार्दो दी विंशी और माइकेल एंजिनो की कलाकृतियों में पाते हैं। कला की प्रगति के लिए गए यथार्थवाद के इन पोषकों के प्रयत्न अत्यधिक सराहनीय हैं। किन्तु उत्थान और पतन के असीम क्रम में यह काल भी बीत गया और यथार्थवाद की परिणति नाटकीय प्रकृतिवाद के रूप में हुई। यह अल्पायु नाटकीय प्रकृतिवाद केवल कृत्रिम था। काखेलियो टिन्टेरेये आदि कलाकारों ने अपनी कृतियों में यह प्रयोग किया। उत्तरी यूरोप में भी फ्लेमिश कलामार्जक इन्हीं तत्वों के अनुरूप अपनी प्रतिभा का विकास कर रहे थे। वस्तुतः ये अत्यन्त व्यवहारिक आदमी थे और उनकी यथार्थता, संसार की यथार्थता थी। वार्नाडक बन्धुद्वय, राजवर्देन लेडर, ब्रुघेल और रुबेन्स आदि ने यथार्थवाद के इस विशाल आन्दोलन को निरन्तर सजीव रखा। ऊपर रेम्ब्रो का उल्लेख आया है। उसकी ख्याति आज भी उज्ज्वल है। अलब्रेसो की चित्रसृष्टि निस्सन्देह विचित्र

है। उसके विस्तृत मानवीय चित्र, धार्मिक भावनाओं का चित्रण पूर्ण यथार्थता से करते हैं। व्होलपिन जैसे व्यक्ति-चित्रक भी इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

इसके पश्चात् वर्तमान-युग का आरम्भ होता है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी में फ्रॉम कला-क्षेत्र में अप्रगुण था। इटैलियन कलाकारों की भाँति फिर एक ऐसे समुदाय का उदय होता है जो दृष्टि-ममस्ययों के अध्ययन में रत थे। नए दृष्टिकोणों में रंग-सिद्धान्तों का प्रतिपादन हो रहा था। प्रकाश और छाया, आकार और चित्र-निर्माण के सम्बन्ध में शोध जारी थी। फोटो-ग्राफ के आविष्कार ने इस आन्दोलन को बड़ी गति प्रदान की। इस प्रकार अभिव्यञ्जनावाद नाम से विख्यात यह आन्दोलन अपनी मूलनीति की स्पष्ट विवेचना करता है, मोने, मैने, पिसेरो, रेनार, कोरो देगास

आदि कुशल कलाकारों ने कैमरा द्वारा प्राप्त की गई तकनीक अभिव्यक्तियों का अनुकरण किया। इस काल में अंग्रेजी वर्ग के टर्नेर कान्स्टेबल और पूर्व रेफ्रेलाइट बन्धुत्व के सदस्य गण आते हैं। चित्रात्मक यथार्थवाद की भाँति ही यथार्थवाद का यह काल अब पूर्णतः प्रकृतिकवाद में परिवर्तित हो गया है। एक परिवर्तन अनिवार्य था, जिसका आगमन हुआ। सेभॉ जैसे अभिव्यञ्जनावाद के उत्तरार्धीय कलाकार पुनः एक बार यथार्थवाद के मूल-गुणों की ओर देखने लगे। आकार उनकी प्रमुख कसौटी थी। पिकासो की कला में हमें यथार्थवाद पोषित इन्हीं कलात्मक सृष्टियों के निरपेक्ष कलावादी प्रयोग यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। इस महान् सर्जक की कलात्मक साधना निसन्देह उल्लेखनीय है।

सर जे. जे. स्कूल ऑफ आर्ट,
बम्बई

—जे. डी. गोंधलेकर

बंगाल की लोकोक्तियाँ

पूँथी, कलम, घड़ी, नारी—नष्ट करे ये अनाड़ी
अनाड़ी आदमी के परले पड़ने से पुस्तक, कलम, घड़ी, नारी नष्ट हो जाने हैं।

दूध, श्रम, गंगावारि—ए तीन बड़ो उपकारी
दूध, मेहनत और गंगा का पानी—ये तीनों बड़े लाभदायक हैं।

कथाते हाथी पाय, कथाते हाथीर पाये (पैर)
मनुष्य को अपनी जवान के कारण कभी हाथी मिल जाता है और उसी जवान के कारण कभी कभी हाथी के पैरों-तले रौंदा जाता है।

रागेर शेष, आगुनेर शेष, शत्रु शेष, ऋषेर शेष राखने नेह
रोग, अग्नि, शत्रु और ऋण का तो अन्त कर देना ही अच्छा है।

तास, तामाक, पाशा—ये तीन कर्मनाशा
ताश, तमाखू और जुआ—ये तीनों मनुष्य को कर्महीन कर देते हैं।

पो० बोलपुर, (वीरभूम),
पश्चिम बंगाल

—भगवानदास पुरोहित

कवि ईश्वरदास की दो अन्य रचनाएँ

‘सत्यवती’ के लेखक ईश्वरदास से सभी परिचित हैं, क्योंकि तुलसीदास जी से ७० वर्ष पूर्व उन्होंने हिन्दी के रूप को सँवारा था। किन्तु उनके विषय में इतनी अल्प सामग्री प्राप्त है कि उससे कुछ निर्णय निकालना दुभर है। वैसे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ‘सत्यवती’ की भाषा के आधार पर उन्हें प्रतापगढ़ के आस-पास का बताया है किन्तु ऐसी अटकलपट्टियाँ हमें कभी-कभी हिन्दी-साहित्य के इतिहास को समझने में बाधाएँ पहुँचाती हैं। हमारी दृष्टि संकुचित हो जाती है और हम उसके बारे में कुछ भी नहीं सोच पाते। यही हाल ईश्वरदास के बारे में हुआ। सबों ने एक ओर जहाँ एक कण्ठ से उन्हें प्रेमाख्यानक काव्यों का प्रथम हिन्दू लेखक माना, वहीं उन्होंने ‘मल्लिकार्जुन मल्लिका’ परम्परानुसार ईश्वरदास के जीवन-मृत की ध्वहेलना की। केवल किसी के सिर कोई पट्टा बाँध देने से कीर्ति नहीं बढ़ती।

कुछ विद्वानों ने ‘सत्यवती’ को प्रेमाख्यानक काव्य कहा, दूसरों ने इन्कार किया। किन्तु धर्म-सापेक्ष इस काव्य में अवश्य ही प्रेम-कथा का एक विशिष्ट अंकुर सबों को उगता दिखा, जिसकी ओर से आँखें न मूँदी जा सकीं। इसके पश्चात् काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को ईश्वरदास के दो अन्य काव्य-ग्रन्थ प्राप्त हुए। वे थे—‘भरत-विलाप’ और ‘सीता वनवास’; किन्तु प्रतियों अपूर्ण होने के कारण उनकी मौलिकता पर संशय रहा। अन्य खोजों में एक चौथा ग्रन्थ ‘अंगद पैत्र’ भी मिला। साथ ही घोषणा हुई कि ईश्वरदास के ग्रन्थों का सम्पादन होने जा रहा है।

सौभाग्यवश अगस्त सन् १९५५ में मुझे अपनी जन्मभूमि के एक अनन्य मित्र के घर १५० से अधिक हस्तलिखित ग्रन्थों के देखने का अवसर प्राप्त हुआ। उनमें ईश्वरदास की कृति ‘सत्यवती’ की भी एक प्रति थी। उसे लेकर मैंने अपनी खोजों का कन्द्र-बिन्दु बनाया। पता चला कि ‘हिंदुस्तानी’ के एक अंक में यह सम्पूर्ण प्रकाशित हुई है। फिर नागरी प्रचारिणी सभा काशी में ‘सत्यवती’ के कुछ पत्रों की सूचना मिली। सबों के सम्यक् अध्ययन के पश्चात् अपनी प्रति की

प्राचीनता एवं मौलिकता पर सुगंध हो मैंने उसके सम्पादन का निश्चय किया। ‘भारती’ के संपादक श्रीयुत हरिहरनिवास द्विवेदी ने मुझे इस दिशा में जो सहयोग दिया, वह कभी न भूलेगा। अब ‘सत्यवती’ एक विस्तृत भूमिका के साथ हिन्दी संसार के समस्त प्रकाश में आ रही है। उसमें पहले ‘भरत-विलाप’ परिशिष्ट के रूप में दे दिया गया था। किन्तु विजयादशमी के शुभ पर्व पर पुनः जब मैं अपनी जन्म-भूमि गया तो ईश्वरदास के दो नवीन काव्य-ग्रन्थ मिले, जो अब तक हिन्दी वालों को अज्ञात थे। वे हैं—‘स्वर्ग-रोहिणी कथा’ तथा ‘एकादशी कथा’। इन दोनों को भी बाद में परिशिष्ट में सम्मिलित करके ईश्वरदास की ‘सत्यवती’ की महत्ता समझाने के लिए, मैंने जहाँ तक सम्भव हो सका है, उसे आधुनिकतम बनाने की चेष्टा की है। ‘सत्यवती’ में इन दो नवीन ग्रन्थों के विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सका। विस्तार से अब लिख रहा हूँ।

‘एकादशी-कथा’ एक धर्म कथा है, जैसा कि कवि ने स्वयं स्वीकार किया है किन्तु इसमें भी प्रेमाख्यानक काव्य के अनेकानेक तत्व वर्तमान हैं। वैसे ईश्वरदास कोई मौलिकप्रेमाख्यानककार नहीं, क्योंकि चाहे ‘सत्यवती’ को लें, चाहे ‘स्वर्गरोहण’ या ‘एकादशी कथा’—सभी संस्कृत ग्रन्थों के छायानुवाद हैं। किन्तु वे (हिन्दी पद्य भाषा) में होने के कारण लोकोपयोगी थे, यही उनकी विशिष्टता थी। ‘स्वर्गरोहण’ में वेदव्यास कृत ‘महाभारत’ की स्पष्ट छाप है। इसे कवि ने एक स्थल पर स्वयं स्वीकार किया है। यथा :

“भारथ व्यास भारती चितलाई, तेहि की छाया करौ चौपाई।” यही नहीं ‘महाभारत’ के आदि पर्व में व्यास और जनमेजय के बीच जो वार्ता होती है, उसी को अक्षरशः ईश्वरदास ने हिन्दी में रूपान्तरित कर दिया है। फिर भी अनेक स्थल ऐसे हैं जो उनकी मौलिक सूक्त के समर्थक हैं। ‘स्वर्गरोहण’ में कविता काल इतने स्पष्ट रूप में लिखा है कि उसमें किसी प्रकार का संशय नहीं रह जाता। यथा :

“संवत कै अब करौ बखाना,

पन्द्रह सै सत्तावन जाना
चैत माम पछ उजियारा,
तिथि पंचमी सोम की बारा
भल्लू रेवती मीनक चन्दा,
सीत सती मोहि भयो अनन्दा
जोगिनिपुर डिल्ली बड़ धाना,
साहि सिकन्दर भै सुलिताना
तेहि दिन कथा अरंभन कीन्हा,
रामचन्द्र मोहि सुधि बुधि दीन्हा”

‘सत्यवती’ की रचना सं. १५५८ में हुई, अतः उससे एक वर्ष पूर्व की रचना, ‘स्वर्गारोहण’ की प्राप्ति पर हमें गर्व होना चाहिए। इससे ईश्वरदास की विकासोन्मुखी काव्य-प्रवृत्ति का पता चलता है। किन्तु ‘स्वर्गारोहण’ तो एक नीतिपरक, आदर्शवादी रचना है। भला ईश्वर-दाम को ‘सत्यवती’ में प्रेमतत्वों के भरने की उद्बोधना कैसे मिली? इस प्रश्न का उत्तर ‘एकादशी कथा’ में मिलेगा जो ‘सत्यवती’ की ही भौति नारी-चरित्र की महिमा बताने के लिए लिखी गई। किन्तु दोनों में वैषम्य यह है कि ‘एकादशी’ में राजा रूपमांगद भी बड़ा सत्यनिष्ठ है। इस कथा का स्रोत वैम तो संस्कृत की ‘एकादशी कथा’ हो सकती है किन्तु मुझे एक अन्य रचना इसी नाम की प्राप्त हुई है जो कवि सूरजदास की लिखी है।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा तथा अन्य शोध-संस्थानों ने यह निश्चय किया है कि सूरजदास का काल सं. १८६६ के पूर्व है, क्योंकि उनकी दो प्रसिद्ध रचनाएँ ‘रामजन्म’ तथा ‘एकादशी कथा’ की प्रतिलिपियाँ इसी काल की लिखी प्राप्त हुई हैं। अन्य कोई साधन नहीं, जिनके द्वारा सूरजदास का ठीक-ठीक काल ज्ञात हो सके। श्री धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी के ‘साहित्य’ में प्रकाशित लेख भी इसकी पूर्ति करने में सक्षम नहीं। मुझे जो ‘एकादशी कथा’ की प्राप्ति मिली है, वह सं. १८२० की है। अतः इसके आधार पर सूरजदास का काल इसके पूर्व हो जाता है।

ईश्वरदास की ‘एकादशी कथा’ और सूरजदास-कृत इसी नाम की कथा में बड़ा साम्य है। उदाहरण के लिए कुछ पंक्तियाँ दे रहा हूँ :

“सुरिज वंश में हरिचन्द राऊ,
पुहुमी रीन जो विप्रन ठाऊँ

तिनके वंश भयो रोहितासू,
सुर नर मुनि फनि कहिं हुलासू
तिनके भे रूपमांगद राजा,
पसरेउ पुत्र पाप सब भागा”

—सूरजदास

“सुरज वंश हरिचन्द भुआरा,
मदनवती रोहतासु कुमारा
सुरिज वंस के बरनि न जाई,
रूपमांगद जग जनमे आई”

—ईश्वरदास

“अवध नगर को बरनै पारा,
जहाँ राम जी लिय औतारा
कनककोट उठे चहुँ पामा,
उठे कंगूरा जनु कविलामा
वैम सूद्र औ बाँभन जानी,
परजा लोग बसै बहु भौंती
सबै सुखी औ मध सुकुमारा,
सब कोउ गावै मंगलचारा
बाप के आगे पूतु न मरई,
सदा अनन्द लोगु सब करई
रौंड न देखी तहं वर नारी,
सब पतिव्रता जो पियहिं पियारी”

—सूरजदास

“औध नगर सो बरनि न जाई,
कंस दल मुनदु बल कीन्हीं
भीतर नगर बसै मनिआरा,
लोग अनन्दित सबै सुकुमारा
बगन गँव बसै बहु भौंती,
भोग पुरन्दित रान्चोन्ह जाती
मढ मएडप सोहै पटमारा,
घर घर गावहिं मंगलचारा
विधवा कतहुँ न देखिय नारी,
पतिव्रता सबै स्वामिहि पियारी”

—ईश्वरदास

“जेहि दिन ब्रतु एकादसी आवै,
तेहि दिन बालकु छीर न पावै

घोरेहु घाम न हाथी पीड़ा,
खगहारेउ न बेंचई बीड़ा”

—सुरजदास

“ब्रतु एकादसी जेहि दिन होई,
तेहि दिन कोठ अंनु न खाई
खीरु न बालक पीवहि,
बूढ़े तरुन मय केम संवारहि
गाडके थकन नहिं लागै मच्छ,
तेहि दिन कवट नहिं मारै मच्छ”

—ईश्वरदास

“रिखि नारद अस बोलै, ब्रंमा काजु न होइ
स्त्री एक उपराजी, बरतु छंडावै सोइ”

—सुरजदास

“मंत्रिन मन अम बोलहि, ऐम मंत्रना होइ
नारी एक निर्मावहु ब्रतु छंडावै सोइ”

—ईश्वरदास

“गढ़े श्रवन दुइ नाक भंडारा,
अस्थन दुइ कीन्हें पुटकारा
नाभि गहिरि रोमावलि कीन्हा,
छुद्र घंटिका ऊपर दीन्हा
गढ़ि जंघा दुइ मनाचितु लाई,
अंगुरी पाय पेंडुरी निर्माई”

—सुरजदास

“बुऐ स्तन दुअ स्थान गढ़ि संवारे,
बिहंसै जानहु चरिहि संवारे
नाभि गहिरि अंनु नहिं जाना,
रिन बंधनु कर कीन्ह धखाना;
जंघ सो पुनि बरनि नहिं जाहीं,
पिंडरी जानहु बिधनै गढ़ि लाई
दस अंगुरी नखतर रतनारी,
जानहु भुंड खमे पदुम के जाती”

—ईश्वरदास

एक ओर जहाँ एक समान दोहे चौपाइयों में अवधी भाषा के माध्यम से दोनों एक ही कथा कही, वहीं पर दोनों की कथाओं के विस्तार में अंतर है। सुरजदास कृत कथा २५० पंक्तियों में है। और ईश्वरदास कृत ४०० पंक्तियों में। सुरजदास ने अधिकतर तीन चौपाई

पंक्तियों के बाद एक दोहा रखा है, जब कि ईश्वरदास ने ५ या ६ पंक्तियों के बाद। फिर भी सुरजदास ने ४, ६, ७, ८, १०, १२, १८ तथा ३४ पंक्तियों के बाद भी कहीं-कहीं दोहा रखा जब कि ईश्वरदास ने ये वैषम्य ३, ४, ९, ८ एवं ७ तक ही सीमित रके। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि यदि एक संचितीकरण है तो दूसरा उसी का वृद्धीकरण। दोनों में कौन पहले की कथा है, कहना कठिन है किन्तु ईश्वरदास के “स्वर्गारोहण” में एक प्रसंग आया है, जहाँ पर ‘सुरजदास’ का नाम उन्होंने बड़े आदर के साथ लिया है, जिससे बहुत कुछ सम्भव है कि सुरजदास ईश्वरदास के पूर्ववर्ती राम भक्त थे। “रामजन्म” का लेखन भी इसी दिशा की ओर संकेत है। प्रसंग निम्न है :

“व्यास बाल मुनि बुधि के साका,
खंड अठारह आगम भाखा
कालिदास अमर पद कीन्हा,
लंखनसेनि पंडित कवि कीन्हा
तिन्हके बंस जो भयेउ इंकारा
कंस बंध जिन्ह कीन्ह ब्रसारा
सुरजदास सीता पद गायो,
ऊखा परच हरिसिंघ देव गायो
कीन्ह धन्य जे बैताल-पचीसी,
जैयदैव किहिन कृष्ण चौबीसी
विपरीति भौंति डंड कुमारा,
किमन केलि जिन कीन्ह रसारा
जिन कबितन पढ़ी बंदौ,
कहै ईमर मन लाई
महि मंडल जेत कविता सो,
तो बरान न जाइ”

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि ईश्वरदास के पूर्व अनेकानेक भक्ति-परक तथा कथा काव्य थे, जिनका मध्यम अध्ययन उन्होंने किया और फिर अपनी रचनाएँ प्रारम्भ कीं। अभी तक हमें उपरोक्त ग्रन्थों का पता न था, जिसके कारण ईश्वरदास की प्रतिभा पर सभी मुग्ध थे। किन्तु जैसा कि ईश्वरदास ने स्वयं लिखा है, उन सबों का वह आभारी है, अतः यदि ईश्वरदास ने “सुरजदास” की कथा से कुछ अंश लिए हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। फिर भी ईश्वरदास के समस्त संस्कृत ग्रन्थ अधिक

पुष्ट सामग्री के रूप में थे, जिनका उन्होंने अनुसरण किया।

“स्वगारोदण” के प्रारंभिक अंश, जैसा कि ऊपर देख चुके हैं, बड़े ही महत्पूर्ण हैं, क्योंकि उनके द्वारा कुछ नवीन बातों पर प्रकाश पड़ता है। ईश्वरदाम के पूर्व भी कितनी लम्बी शृंखला अवधी-काव्य की थी, स्पष्ट ही है। अतः यदि यह कहा जाय कि उनमें २००-२५० वर्ष पूर्व भी अवधी विकास को प्राप्त थी तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वैसे मुझा दाऊद कृत “चन्दायन” इसकी पुष्टि के लिए पर्याप्त है किन्तु शुद्ध भारतीय परम्परा भी उसके भी पूर्व विद्यमान थी...अवधी कविता की, अब हममें संदेह नहीं रह जाता। मुझे “विष्णु चरित” की एक काव्य कृति मिली है, जिसके कुछ अंश “स्वगारोदण” में साम्य रखते हैं। सम्भव है कि एक अज्ञात कवि की कृति “विष्णु चरित” में भी ईश्वरदास प्रभावित हुए हों।

ईश्वरदास ने ‘एकादशी कथा’ में राजा रूपमांगद के एकादशी-व्रत निष्ठ होने का वर्णन किया है। उसकी रानी ‘संध्यावती’ बड़ी पतिव्रता थी, अतः जब एक बार राजा एक अन्य सुन्दरी...मोहिनी, जिसे देवताओं ने राजा को व्रत च्युत कराने के लिए भेजा था...ले आए तो सहर्ष उसने उसे भी साथ रहने दिया। किन्तु जब मोहिनी ने राजा के व्रत छुड़वाने के लिए पड्यन्त्र रचा तो राजा बड़े विचलित हुए। एकादशी व्रत न टूटने पाए, इसके लिए मोहिनी की दूसरी शर्त को पूरा करना पड़ा। मोहिनी ने जब देखा कि राजा और रानी दोनों ही समान रूप में दृढव्रत हैं तो उसने उनके पुत्र का शीश माँगा। राजा मर्माहत हो गया किन्तु रानी ने कहा, ‘व्रत निर्वाह के लिए हम यह भी करने को तैयार हैं।’ रानी के पतिव्रत-धर्म पर भगवान् संतुष्ट हुए और राजा तथा रानी स्वर्ग जा कर सुख भोगने लगे।

यों तो कथानक में कहीं भी प्रेमाख्यानक काव्य के तत्त्व नहीं दिखते किन्तु जहाँ मोहिनी का सौन्दर्य वर्णन है वहाँ ‘संध्यावती’ काव्य की ही भाँति ‘एकादशी कथा’ में भी प्रेमाख्यानक काव्य के तत्त्व मिलने लगते हैं। हाँ, कुतुबन या मेफन में, जो ईश्वरदाम से बाद के कवि हैं, ये तत्त्व अत्यन्त उभरे हुए हैं। संस्कृति-निष्ठ ईश्वरदास के लिए अपनी संस्कृति संयमित थी, अतः वे उस परिधि के बाहर नहीं जा सके, जिसके कारण उनकी कृति प्रेमा-ख्यानक न हो कर ‘धर्म-कथा’ जान पड़ती है। मोहिनी

के शृङ्गार एवं रूप वर्णन, काम-वासना एवं तृप्ति आदि के कुछ अंश नीचे दिए जा रहे हैं, जो प्रेमाख्यानकों के आकर्षण केन्द्र होते हैं :

“ब्रह्मा नारदु कहै बिचारी
माया मोह रंग लावै नारी
रम नपजावै बोलैबानी
कबहुँ कामिनी कबहुँ सुर व्यानी
जेहि नर के नारि नहिँ पास
सदा काल जम होइ निरामा
जहँ लगु होइ सकल संसार
काढ़ि लेहु सब रूप मुढ़ारु”

× × ×

“सीस कंस निर्मथल लिलारा
भौंह मोंग कहू सुहनी दारा
खवन कबेल कंठ बहु भौंति
अभरन सोदात कौंति
तेहि पाछे दुह बौंह संवारी
जानहु मरवर के पौ नारी
दुअँ अस्थन दुअँ स्थान गाढ़ संवारे
बिहसे जानहु चरै संवारै
नाभि गहिरि अन्तु नहिँ जाना
रिन-बन्धन कर कीन्ह बखाना
जँघै सौ पुनि बरनि नहिँ जाई
पिंडुरी जानहु बिधनै गढ़ि लाई”

× ×

“मव देवतन्ह देखै ठाढ़े
जानहु धरि के अंग तिन्ह काढ़े
नैन कटोरन्ह चितवै नारी
हरि-हरि ब्रह्मा रहे निहारी
देखि-देखि रखे सबे अकुलाई
देखि कामिनी तन दरसे आई
नर गंधप देखहिँ चितु लाई
नारि देखि सब गये मुरछाई”

× ×

“मरम कंठ तहँवा कोइ गावै,
अजगुत एकु जो राज देखावै
कोकिल कौ ता करै पुकारा
सीनल बाउ बहै अमरारा

चमकि भूमि तहं गावैं नारी
कंवल नैन तहं रहे निहारी”
× ×
“दगधि कामु तन रहे न जाई
छिनु एक राउ परे मुरछाई”
× ×
“नैन देखाइ उर अम्बर टारा
बिहंसी कहौ किछु प्रेम रिमारा
राजा कहै माँगु तू रानी
सरबसु दान देउं मैं झारी”
× ×
“तो मैं माँगौ राजा बाचा, करहु प्रबान
तुम्ह प्रान नारी हम, बाचा होइ आन”
× ×
“मैं तोही मन अम बाचा कीन्हीं
राउ अलिंग मोहनी दीन्हीं
राउ अलिंगन दीन्हेउ कैसे
जैसे कंवलु धरम चढ़ि बैठे
छोड़ि अलिंगन अंकले लावा
मुए मार जानहु अंत्रित पावा”
× ×
“जेहि तन मोहिनी फेरै नैन
तेहि कर जानहु हरसि पराना
मोहिनी मुख जो देखै पावा,
तिन्ह नारी आपन ग्यान गंवावा”
× ×
“नगर मांह है चित्रमारी
ठांव-ठांव खेलहिं कान्ह धमारी
तहं बारी लै पलंग बिछाई
चौवा चन्दन पुहुप बसाई
कवनि-कवनि विधि निर्मल साजु
मोहिनी महित है तहं राऊ”
× ×
“तेहि खन सो मैं तोहि मनु लावा
दुख न जानौ बड़ सुख पावा
बिन जल कैसे जीहैं मंछु
आजु राति में भइउं निरासी
तुम्ह तो जागा व्रतु एकादसी
बिना तैल जैसे दिआ औ बाती
तुम बिन देव काल भै राती”
× ×

“तुम्ह जग बेहुर बिसारा
तुम्ह जागरन करिहु जाहि
परम हंस सो मोरे स्वामी
सौ तो लिहे उड़ि जाइ”
× ×
“आजु राति मोरे सोवहु संग
करहु भोग बहुत बिधि रंगा”
× ×
“जो पूछहु स्वामी मोहि बाता
जग मंह जमु कै लैहु
पुत्र कर सीत काटि कै
मोहिनी लै कै देहु”
× ×

उद्धरणों से स्पष्ट है कि चित्रमारी, रूप-वर्णन, रति, राम, बाचा आदि प्रेमाख्यान काव्य के प्रमुख अंग हैं, जिनका समावेश ‘एकादशी’ में है किन्तु मोहिनी की उत्पात ईश्वरदास ने शुद्ध प्रेमाख्यान के दृष्टिकोण से न करके व्यवधान के रूप में ला कर खड़ी की है। यही कारण है कि संध्यावती रानी का पातिव्रत धर्म अन्त तक अक्षत रहता है। इस प्रेम-रिमाला को ईश्वरदास ने प्रारम्भ में राम-कथा ही कहा है, अतः उस समय की प्रवृत्तियों के अप्रदूत होने के नाते ईश्वरदास ने विलासमयी कविता को भी राम-कथा या भक्ति रस की कविता कहना अधिक पसन्द किया। ज्ञात होता है कि स्वच्छन्द-रूप में प्रेमाख्यानों को लोग स्वीकार न करते थे किन्तु जब उसे धर्म-कथा या राम-कथा के चोले में आवृत कर दिया जाता तो वे छुक कर उसका पान करते थे। ऐसी प्रवृत्ति आज भी हमारे समाज में है। नग्न-रूपता को कोई नहीं चाहता। ईश्वरदास के भी पूर्व के कवियों ने प्रेम-कथाओं के रचने के प्रयास किए किन्तु जनता उन्हें उस रूप में स्वीकार करने को तैयार नहीं थी। सूफी लोगों को नग्न-प्रेम कथाओं के लेखन में सफलता इसलिए मिली कि वे उनमें साधना के रूपक उन्हीं के माध्यम से प्रस्तुत करते। कहना अनुचित न होगा कि शुद्ध भारतीय परम्परा के जितने भी आख्यानक काव्य हैं वे एकाध को छोड़ कर, शलील हैं, जब कि सूफी प्रेमाख्यानक अत्यन्त अश्लील। किन्तु इस सब का प्रभाव तत्कालीन समाज के लिए हानिकर था क्योंकि जनता उनके परिणामों को न समझ कर केवल प्रेमवार्ता

के नाते ही उन्हें पसन्द करती रही। इन प्रेमाख्यानों का भयावह प्रतिफल हमें रीतिकालीन काव्य में दिखाई पड़ता है, जहाँ अश्लीलता एवं विलासिता के कारण कविता का शब्द-शब्द घृणास्पद हो गया है। यदि ईश्वरदास के द्वारा चलाई गई परम्परा का अनुसरण हुआ होता तो आगे का समाज संयमित एवं मर्यादित रहता। किन्तु साहित्य की प्रवृत्तियों तो बहुमत का अनुसरण करती हैं और प्रेमाख्यानकों की अश्लील अभिव्यक्ति ने तो जन-माधारण के चित्तों को चुराकर भक्ति-भावना का निष्कासन ही करा दिया। यही कारण था कि प्रेमाख्यान के विकास-काल में यानी सं० १२०० से सं० १६०० तक, भक्तिमयी कविता का मीरा, तुलसी एवं सूर द्वारा प्रादुर्भाव हुआ, जिसने जन-मन को क्लुपित होने से बचाया और कामिनी-कंचन के मोह से वैराग्य की शिक्षा दी। अन्यथा तुलसी की वाणी में वह शक्ति थी कि प्रेमकथाओं में जादू भर सक्ते किन्तु उन्होंने गिरते समाज को बचाया। साहित्य में एक कान्ति पैदा की, जिसका प्रभाव आज तक वर्तमान है, नहीं तो आज 'फ्राइड' सिद्धान्तों ने भारतीय जनता के चारित्रिक पतन में प्रेमाख्यानकों का मन्त्र किया होता।

'स्वर्गरोहण' में व्यामदेव राजा जनमेजय से पांडवों की विजय का वर्णन करते हैं। उनके पश्चात् बन्धु-वध के पश्चात्तापस्वरूप श्रीकृष्ण के पाप द्वारकापुरी तक पहुँचो पाण्डवों का गमन बताते हैं। पहले तो श्रीकृष्ण उन सबसे मिलने से इन्कार कर देते हैं, क्योंकि उन पर बन्धु-वध का अपराध है। अतः उन चाण्डालों के सुग्यों को देखना ही पाप होगा। किन्तु बाद में श्रीकृष्ण उनसे आते हुए कलियुग की बदलती परिस्थितियों का वर्णन करने लगते हैं। यहाँ तक कथा उपलब्ध हुई है, सम्भव है और आगे रही हो।

इस कथा में प्रेमाख्यान-काव्य के कांडे भी लक्षण नहीं। हाँ एकाध चीज पर जो ईश्वरदाम से संबन्धित है, नवीन प्रकाश पड़ता है। यथा, एकाध स्थलो पर ईश्वरदाम ने अपने को कायस्थ कहा है। इस कथन की पुष्टि 'एकादशी कथा' में आए ऐसे ही अनेक प्रसंगों में हो जाती है। अतः यह अब निर्विवाद है कि ईश्वरदाम कायस्थ थे। (दोखण 'स्वर्गरोहण' २० वां दोहा "ईश्वरदाम कहै कायस्थ सीतापति रघुनन्द" तथा 'एकादशी कथा'—ईश्वरदाम काएथु कही, रुपमांगदु

कर राज।"

'एकादशी' में ईश्वरदास के गुरु के नाम का भी पता चलता है। वे उन्हें रामचन्द्र के नाम से स्मरण करते हैं। स्मरण रहे, सीतापति रामचन्द्र से ये भिन्न हैं। गुरु की आज्ञा से ही इन्होंने 'एकादशी कथा' प्रारम्भ की।

"सीता-पति बन्दौ रघुराया
माता-पिता औ गुरु की दाया
रामचन्द्र मोरि पुरवें आसा
पण्डित जेन्ह करे दास तिन्ह कर दासा
तिन्ह मोसो अम कहै बुझाई
रामचरित्र कहहु कुलु गाई"

'स्वर्गरोहण' के प्रारम्भ में भी ईश्वरदाम ने अपने गुरु का स्मरण किया है :

"तेहि दिन कथा अरंभज कीन्ही
रामन्द मोहि सुध-बुध दीन्ही"

'स्वर्गरोहण' में कवि ने अपने जन्मस्थान का भी उल्लेख किया है, साथ ही साथ अपने वंश का भी। जनक वंशज पहले काशी में मणिकर्णिका घाट पर जा बसे। उनमें गौरी नामक व्यक्ति प्रकाण्ड पंडित हुआ। बाद में तिलक सिंघ के परिवार वाले गाजीपुर परगना में जा बसे। उस वंश में रुपई, नन्दन, रतन, पराग, वीर-भान, जुड़ई, ग्यान, देवी, भोपात, हरख, भवानी, नगदू तथा पलदू आदि हुए। वे सभी राम-भक्त थे। जिनके बाद ईश्वरदाम स्वयं हुए और कथा कही।

"धन्य कासी मिर्जी तिपुराी
पर पुरुख तंह कीत हमारी
पुरुख हमारि बसे तेहि ठाउँ
खरे पण्डित तेहि गोमो नाउँ
तिन कर वान सबै केहु जाना
पर उपकार बचन पर वाना
जो गाजीपुर परगना
पंचोत्र कहौ बखानि
तिलक मिह कै भइल

वमे लोग तंह जाइ
तिन्ह के बंम भये हरिदाम
कुल के राजा गर्ब नेवाज
आनन्दी ब्रत करे नेवास
बना सदा फल तिन्हें बिलासा
रूपई, नन्दन रतन परागू
रति रानी खरगु लागू
वीर भान ओ जुडई गयान
देवी भोपति हरख भवान
नगदू ओ पलदू कुल तारा
मनि महेश फंडि मनियारा
महा पुरुख बरनौ कहा
सबै राम के दास
उमरदास तंहि पाछे
कथा कीन्ह परगाम”

× × ×

‘स्वर्गरोहण’ १५०-१६० पंक्तियों का काव्य-ग्रन्थ है, जिसका उद्देश्य हरिभक्ति एवं नीति-चर्चा है। ग्रन्थ के अन्त में कलियुग का वर्णन है, जिसकी पुनरावृत्ति हम तुलसीदास जी की ‘रामायण’ में पाते हैं। कहने का आशय यह कदापि नहीं कि तुलसीदास जी ने ईश्वरदास के भावों की चोरी की वरन् इतना ही ईर्ष्या-मात्र करना है कि तत्कालीन समाज में जो अनीति फैली थी, उसका चित्रण तुलसीदास के पूर्व ईश्वरदास भी कर चुके थे। ईश्वरदास के भी पूर्व ‘वृष्ण-चरित’ के लेखक के सामने भी यही समस्या थी, जिसका अंकन उसने किया और जिसका उद्धरण ईश्वरदास ने ‘स्वर्गरोहण’ में दिया। तुलसी की पंक्तियाँ :

“कलिकाल विहाल किए मनुजा
नहि मानत कोउ अनुजानतुजा
कुलवन्ति निकारहि नारि सती
गृह आनहि चेरि निवेरि गती”

के ही समान ईश्वरदास की पंक्तियाँ देखें :

२५, नसीबपुर बहिनयारा,
इलाहाबाद-१

“के उन मानहि बॉभन गाई
के उन मानहि जठरे भाई
तुलसी उपारि नर लड हैं भंगा
तजहि नारि दामी सौ संगी”

दोहे-चौपाइयों में लिखा यह ग्रन्थ ईश्वरदास की कोई विशिष्ट रचना तो नहीं है किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है, कई महत्वपूर्ण सूचनाएँ देने के कारण महत्वपूर्ण अवश्य है। ४, ५, ६, एवं सात चौपाइयों के बाद दोहों का क्रम है। सूफी कवियों की भाँति पाँच या सात पंक्तियों के बाद दोहे का निश्चित उपक्रम देखने को न मिलेगा।

‘एकादशी कथा’ में अन्य कृतियों की ही भाँति प्रारम्भ में शाह सिकन्दर तथा दिल्ली का उल्लेख है किन्तु बड़े ही चलताऊ ढंग का :

“पातिमाहि दिल्ली बसै कैसी
धुरपुर इन्द्र सिकन्दल जैसी”

उसके रचना-काल का कोई निर्देश नहीं मिलता किन्तु अन्तस्माद्वियों के अनुसार यह रचना अवश्य ही ‘मल्लवती’ के पूर्व की है।

ईश्वरदास एक सर्वतोमुखी प्रतिभा के सन्त थे। वे राम के बड़े भक्त थे। अतः उन्होंने राम-चरित्र के विविध अंगों पर सौक्ष्म काव्य लिखे। उनके लिखे ‘भरत-विलाप’, ‘सीता बनवास’ तथा ‘अंगद पैज’ प्राप्त हुए हैं। ‘स्वर्ग-रोहण’, ‘महाभारत’ में सम्बन्धित कथा है जब कि ‘मल्लवती’ मार्कण्डेय पुराण से सम्बन्धित है। अभी और कितने ग्रन्थ अनश्रोजे पड़े हैं, कहा नहीं जा सकता। किन्तु ग्रन्थों की संख्या प्रचुर थी, इसमें सन्देह भी नहीं। ‘मल्लवती’ में ‘अलपकाल-बुधि’ कह कर कवि अपनी युवावस्था की ओर संकेत करता है।

इन तमाम कृतियों के आधार पर अब ईश्वरदास के जीवन एवं साहित्य के विवेचन की आवश्यकता है। वैसे करके हम हिन्दी साहित्य के इतिहास के प्रति उचित न्याय बरत पाएँगे।

पंजाब-केसरी लाला लाजपत राय

“मेरे शरीर पर पड़ी हुई एक-एक चोट ब्रिटिश साम्राज्य के कफ़न की कील होगी”—ये शब्द पंजाब के मरी लाला लाजपत राय ने जब कहे थे, तब किमको यह कल्पना थी कि वे इतने सत्य प्रमाणित होंगे कि अंग्रेज़ यहाँ से स्वयं अपने साम्राज्य को समेट कर चल देंगे। उन्होंने भारत में अपने साम्राज्य की ज़िम रूप में स्थापना की थी और उसको बनाए रखने के लिए अन्तिम समय तक जिन तृष्ण उपायों से काम लिया था, उनको देखते हुए यह कौन मान सकता था कि संसार में अपने समय में सबसे अधिक व्यापक, शक्ति-शाली और वैभवशाली साम्राज्य का भारत में अंग्रेज़ स्वेच्छा से अन्त कर देंगे। लाला जी का प्रायः सारा जीवन अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध एक लम्बा संघर्ष करने में बीता था और उन सभी प्रवृत्तियों में उनका मुख्य हाथ था जो अंग्रेज़ी राज का अन्त करके स्वदेश को स्वतन्त्र करने के लिए प्रारम्भ की गई थीं। स्वदेश-प्रेम से वे कैसे ओतप्रोत थे, इसको प्रकट करने के लिए उनके वे शब्द आज भी देश के वातावरण में गूँज रहे हैं जो कि प्रत्येक भारतवासी के सामने आदर्श के रूप में सदा ही अंकित रहने चाहिए। वे शब्द ये हैं कि “मेरा मजबूत हृदय परस्ती, मेरी मजलत कौमपरस्ती, मेरी डबा-दत खलकपरस्ती, मेरी अदालत मेरा अन्त-करण हैं। मेरी जायदाद मेरी कलम है, मेरा मन्दिर मेरा दिल है और मेरी उमंगें सदा जवान हैं।” उनके इन शब्दों में उनके व्यक्तित्व, चरित्र और महत्वाकांक्षाओं की अत्यन्त स्पष्ट छवि प्रकट होती है। जब उन्होंने मार्वाजनिक जीवन में प्रवेश किया तभी से वे अपने इन विचारों अथवा विश्वासों पर चढ़ान की तरह दृढ़ हो गए थे। कभी भूल कर भी उनसे विचलित नहीं हुए। उनके लिए उन्होंने बड़ी से बड़ी यातनाएँ सहन कीं। जेल और निर्वासन तो उनके लिए बहुत मामूली थे। अन्त में इन्हीं यातनाओं के परिणाम-स्वरूप उनकी इदलीला समाप्त हुई। परन्तु अपने पीछे वे देश-मेवा का जो शानदार अनुकरणीय उदाहरण छोड़ गए, उसके लिए गाँधी जी ने बिजहुल ठीक ही लिखा था कि “लाला जी

एक जीवित संस्था थे। अपनी जवानी से ही उन्होंने देश-भक्ति को अपना धर्म बना लिया था और उनके देश-प्रेम में संकीर्णता नहीं थी। वह अपने देश से इसलिए प्रेम करते थे कि वह संसार से प्रेम करते थे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तराष्ट्रीयता से भरपूर थी। उनकी सेवाएँ विविध थीं। वह बड़े ही उत्साही समाज-सेवक और धर्म सुधारक थे। ऐसे एक भी मार्वाजनिक आन्दोलन का नाम लेना सम्भव है, जिसमें लाला जी शामिल न थे। सेवा करने की उनकी भूख सदा अतृप्त ही रहती थी। उन्होंने शिक्षा-संस्थाएँ खोलीं। वह पददलितों के मित्र बने। जहाँ कहीं दुःख दरिद्रता होती वहीं, ही वह दौड़ पड़ते थे।” मानव-प्रेम से ओत-प्रोत उनके विशाल एवं उदार हृदय, उनकी चहुमुखी मार्वाजनिक भावना, अदम्य एवं उत्कट देश-प्रेम और राष्ट्रभक्ति तथा दुःखियों और दरिद्रों के लिए उनकी सहृदयता का इससे अधिक सुन्दर चित्र अंकित नहीं किया जा सकता।

अपनी चहुमुखी मार्वाजनिक प्रवृत्तियों को छोड़कर वे पंजाब पर छोड़ गए, उसका चित्र प्रकट करना कठिन है, परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि साम्प्रदायिक संकीर्णताओं का अस्वाभाविक रूप से पंजाब उनके अभाव में निश्चय ही वह न होता, जो कि वह आज दिख रहा है। लाला जी अपने पीछे जो विरासत छोड़ गए, उससे अनुप्राणित होने वाले देश-भक्त युवक पंजाब के नव-निर्माण में मदद लगे रहेंगे। वीर युवक भगतसिंह और उनकी नौजवान भारत मभा के साथी उसी से अनुप्राणित होकर हँसत-हँसते फाँसी पर भूल गए और उनका वह अमर बलिदान नव-जीवन की नई ज्योति प्रज्ज्वलित कर गया। पंजाब के निर्माण में लाला जी का बहुत बड़ा हिस्सा है। कभी-कभी देश में राष्ट्रीयता ने उग्र रूप धारण किया और राष्ट्रीय आन्दोलन ने नई कगवट ली, तब सदा ही अंग्रेज़ी शिक्षा के विरुद्ध एक चेतना पैदा होकर राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता अनुभव की गई। पूना में लोकमान्य तिलक और उनके माथियों ने १८८५ के लगभग डेक्कन एजुकेशन सोमायटी की स्थापना करके शिक्षा के क्षेत्र में

जो काम किया था और उसका जो विस्तार भारे महाराष्ट्र में हुआ था, वही काम आर्य-समाज ने १८८६ में लाहौर में डी. ए. वी. कालेज की स्थापना करके उत्तर-भारत में शुरू किया था। लाला जी उसको शुरू करने वालों में प्रमुख थे। पंजाब शिक्षा-संघ की स्थापना करके १९०१ में अपने जन्म-स्थान जगरावा में अपने पिता जी की स्मृति में राधाकृष्ण हाईस्कूल की और पंजाब में स्थान-स्थान पर अनेक छोटी बड़ी शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की। लोकमेवा की भावना आप में उन्हीं दिनों में जागृत हो चुकी थी। महाराष्ट्र में दुर्भिक्ष पड़ने पर और पूना में प्लेग फैलने पर लोकमान्य ने लोक-मेवा का जो आदर्श उपस्थित किया, उसी का अनुसरण लाला जी ने उत्तरी-भारत में किया था। १८९६ में उत्तरी-भारत में, १८९९ में राजपूताना में और १९०७-८ में बिहार तथा संयुक्त-प्रान्त के दक्षिणी जिलों में भयानक दुर्भिक्ष पड़ने पर और १९०५ में काँगड़ा में भूकम्प आने पर आपने अपनी उत्कृष्ट लोकसेवा का परिचय दिया था। अपनी इन्हीं सार्वजनिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर आप कांग्रेस में सम्मिलित हुए और १८८८ में इलाहाबाद में सबसे पहले कांग्रेस के अधिवेशन में उपस्थित हुए। वहाँ कौन्सिल-सुधार के प्रस्ताव पर उर्दू में जो भाषण दिया, उससे कांग्रेस के बड़े-बड़े नेताओं की आँखें महमा आप पर ही जम गईं और कांग्रेस में अपना विशिष्ट स्थान बनाने में आपको अधिक समय नहीं लगा। १९०५-६ में कांग्रेस में गरम दल का अभ्युदय हुआ और देश में हिंसात्मक क्रान्ति का कुछ व्यापक रूप देख पड़ा। तब लाल, पाल, बाल के नाम से देश का राष्ट्रीय जीवन में प्रकट हुई त्रिमूर्ति में आपका प्रमुख स्थान था। सूरत-कांग्रेस के गरम-नरम दल में जब संघर्ष हुआ, तब गरम-दल आपको ही उसका अभ्युत्थ बनाना चाहता था। उसी वर्ष मई में माराडले जेल में आपको नजरबन्द किया गया। नजर-बन्दी निर्वागन, कारावास आदि की यातनाओं का जो लम्बा मिल-सिला शुरू हुआ, वह जीवन के अन्त तक १९२८ तक बना रहा। बंगाल की खूनी क्रान्ति का पंजाब पर भी असर पड़ा और आपका घर उन प्रवृत्तियों का केन्द्र बन गया। सरदार अजीत सिंह, लाला हरदयाल आदि आपके अन्यतम साथी थे।

कांग्रेस के शिष्टमराडलों में आप १९०६ में

और १९११ में इंग्लैण्ड गए। दोनों ही बार आपने इंग्लैण्ड में स्वदेश के सम्बन्ध में तीव्र आन्दोलन किया। १९१४ में पहला महायुद्ध छिड़ जाने से आपको स्वदेश लौटने की अनुमति नहीं मिली। तब आप अमरीका चले गए। वहाँ आपने भारत के स्वराज्य-आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी लेखनी और वाणी द्वारा पंचंड आन्दोलन किया। अनेक पुस्तकें और पुस्तिकाएँ लिखीं। “यंग इंडिया” नाम से मासिक पत्र का प्रकाशन किया। वहाँ की गंदर पार्टी से सम्पर्क कायम करके स्वदेश लौट कर भारतीयों को देश-सेवा में लगने के लिए आपने प्रेरित किया। मेजिनी और गेरीबाल्डी की तरह जहाँ भी कहीं रहे स्वदेश का चिन्तन और स्वराज्य की प्राप्ति का प्रयत्न निरंतर करते रहे। १९२० में स्वदेश लौटने पर मितम्बर में कलकत्ता में गाँधी जी के अमहयोग और सत्याग्रह के कार्यक्रम को अपनाने के लिए कांग्रेस का जो विशेष अधिवेशन हुआ, उसके आप अध्यक्ष चुने गए। गाँधी जी से कुछ मतभेद होते हुए भी आपने अपने को उनके साथ ऐसा तन्मय किया कि बार-बार आप जेल गए और जेल में ज्ञय के शिकार हो गए। १९२८ में ३० अक्टूबर को साइमन कमीशन के बहिष्कार का नेतृत्व करने पर लाहौर स्टेशन पर जुलूस पर जो लाठी-प्रहार हुआ, उसकी कुछ चोटें आपको भी छाती पर फेलनी पड़ीं। उन्हीं के परिणाम-स्वरूप १७ नवम्बर को आपका देहावसान हो गया। इस प्रकार एक वीर योद्धा और कभी न पीछे हटने वाले सेनापति की तरह आपने अपने को देश-सेवा और राष्ट्रभक्ति पर न्योछावर कर दिया।

लाला जी केवल योद्धा ही नहीं किन्तु रचनात्मक प्रवृत्तियों के प्रमुख संगठन-कर्ता भी थे। १९०० में आपने मेघ कहे जाने वाले हरिजनों के उद्धार का बीड़ा उठाया और पंजाब में सबसे पहले हरिजन-सेवा का कार्य शुरू किया था। स्वदेशी और समाज-सुधार की प्रवृत्तियों में भी आपका मुख्य हाथ था। कांग्रेस के साथ होने वाली स्वदेशी-प्रदर्शनी और राष्ट्रीय समाज-सुधार सम्मेलन आपकी ही सूझ-बूझ के परिणाम थे। १९०६ में कलकत्ता में कांग्रेस को नई दिशा दिखाने वाले जिस चतुर्मुखी राष्ट्रीय कार्यक्रम को लोकमान्य ने प्रस्तुत किया था, उसका अनुमोदन करने वाले आपही थे। वह पहला अवसर था जब कांग्रेस को स्वदेशी, राष्ट्रीय-शिक्षा,

विदेशी बहिष्कार आदि को अपना कर स्वराज्य के लिए रचनात्मक कार्य करने और देशवासियों में स्वावलम्बन की भावना पैदा करने के लिए प्रेरित किया गया था। इंग्लैण्ड और अमेरिका में भी आपने ठोस प्रचारात्मक काम करने वाले कुछ संगठन खड़े किए थे, १९२०-२१ में लाहौर में राष्ट्रीय विद्यापीठ, तिलक स्कूल आफ पोलिटिक्स और लोक-सेवा मण्डल की स्थापना आपकी रचनात्मक प्रवृत्तियों के उत्कृष्ट उदाहरण कहे जा सकते हैं। युवकों को राजनीति और अर्थशास्त्र की शिक्षा दे कर आजीविका की चिन्ता से मुक्त करके सारा जीवन देश-सेवा में खपा देने के लिए प्रेरित करने का इन संस्थाओं ने विशेष कार्य किया।

लाला जी लेखनी और वाणी दोनों के धनी थे। लेखनी में जो ओज और प्रवाह था, उससे कहीं अधिक वाणी में था। सचमुच ही सिंह की तरह आप गरजते थे और जब लाउड स्पीकर आदि का कहीं नाम तक नहीं था, तब हजारों की जनता को अपनी सिंह-गर्जना से आप घण्टों प्रभावित किए रहते थे। आपके बाद कांग्रेस में वैसी सिंह-गर्जना फिर सुनने में नहीं आई। लिखने का जो सिलसिला आपने युवावस्था में प्रारम्भ किया, वह जीवन-भर बना रहा। मण्डले की नजरबन्दी विदेशों के निर्वापन और कारावास के कठोर जीवन में भी उसको जारी रखा गया। उर्दू और अंग्रेजी दोनों भाषाओं पर

आपका एक-सा अधिकार था। साहित्य-सेवा आपके लिए देश-सेवा का साधन-मात्र थी। इसलिए जो कुछ भी आपने लिखा, उसमें देश-सेवा, देश-भक्ति तथा राष्ट्रीय भावना की ही प्रधानता रही। मेजिनी, गेरी बालडी, शिवाजी, कृष्ण, बन्दा, बैरागी, स्वामी दयानन्द, गुरुदत्त, विद्यार्थी आदि आपकी युवावस्था की रचनाएँ हैं। अमरीका में रहते हुए आप 'आर्य-समाज', 'यंग-इंडिया' और 'भारत का राजनीतिक भविष्य' आदि अनेक ग्रन्थ लिखे, जिन पर भारत आने में कई वर्षों तक प्रतिबन्ध लगा रहा। १९२० में स्वदेश लौट कर उर्दू में 'वन्दे-मातरम्' और अंग्रेजी में 'पीपुल' नाम के साप्ताहिक-पत्र प्रारम्भ किए। 'मिम मेयो' की 'मदर इंडिया' के उत्तर में लिखी गई 'अनहैपी इंडिया' या 'दुखी भारत' आपकी सर्वोत्तम रचना है। 'मेरी आत्म-कथा' भी प्रेरणाप्रद रचना है।

इस प्रकार लाला जी ने जिस कर्मठ जीवन को बिताया, वह देश-वासियों के लिए सभी क्षेत्रों में आदर्श कहा जा सकता है। इसीलिए तो गांधी जी ने उनको एक जीवित संस्था कहा और अपने इस संस्था रूपी जीवन से लाला जी लोक-सेवा का जैसा काम कर गए, वैसा अनेक संस्थाएँ भी मिल कर नहीं कर सकीं। आपका सारा जीवन और जीवन का एक-एक क्षण देश-सेवा में ही पूरा हुआ।

४०-ए हनुमानरोड

नई दिल्ली

—सुभद्रा देवी

मैं उस पीढ़ी का हूँ जिसने नैपिज में
युद्ध प्रारम्भ किया;
आठ वर्ष तक सैनिक वेश पहना;
और जब शान्ति हो गई,
तो मेरे पास पहनने के लिए एक कपड़ा न रहा

—ड्यूक आफ एडिनबरा

प्राचीन वेश-जीवन का प्रियपात्र : विट

प्राचीन काल में गणिकाओं के मुहल्ले को वेश कहा जाता था। वेश की गली के लिए वेशरथ्या वेश-वाट या वेशवाटी शब्द प्रचलित थे। यह नगर की प्रधान और प्रसिद्ध गली समझी जाती थी। वेशमार्ग में पहुँचने का प्रधान रास्ता इस प्रकार था — पहले नगर-रथ्या (शहर की गलियाँ) पार कर विपणि मार्ग (आम बाजार) में पहुँचते थे; फिर वहाँ से पुष्प वीथिका (फूल गली) के बीचों-बीच पानागारों (शराब की दूकानों) से दाहिनी ओर मुड़ते हुए शृङ्गारक (तीन मुहान्नी) द्वारा मकररथ्या के वेश में दाखिल होते थे। प्रस्तुत लेख में वेश जीवन के प्रिय-पात्र विट के सम्बन्ध में हमें कुछ निर्देश करना है। 'विट' एक ऐम लोगों की जाति थी जो अपने-अपने मित्रों की सहायता करने और गणिकाओं की चापलूसी करने के लिए रात-दिन वेश में घूमा करते थे। उन्हें वेश के सब मामलों से पूरा परिचय था, कभी-कभी एकत्र जुट करके उन मामलों पर विचार-विमर्श भी करते थे जो वेश के कामुकों और कामिनियों के सम्बन्ध में होता था। गणिकाएँ इनका पूरा सम्मान करती थीं। 'विटों' के सम्मान के लिए वेश में इनके नाम के साथ-साथ 'भाव' शब्द का प्रयोग किया जाता था। जैसे : भावजरद्गव, भाव-वैशिकाचल, भाव-वाहतव आदि। इस आदरसूचक सम्बोधन से ही व्यक्त हो जाता है कि वेश में 'विट' नामधारी महाशयों की कितनी चलती थी।

बुढ़ापा से जर्जर होने के कारण 'विट' प्रायः रमायन का सेवन करते, ये जिमसे उनकी नई जवानी (केशोरक) फिर से लौट आए। अपने वार्धक्य को छिपाने के लिए खिजाब लगाना तो इनका मुख्य कार्य था। प्राचीन काल में खिजाब के लिए नीली-कर्म, नीला-लेप, श्याममंजरी, यत्तकर्दम आदि शब्द प्रचलित थे। सम्भव है ये शब्द भिन्न-भिन्न प्रकार के खिजाब के लिए प्रयुक्त होते रहे हों। 'पद्मभाभृतक' नाम एक भाण में श्री शूद्रक ने रमायन और खिजाब आदि का प्रयोग करके माया से यौवन कर्म को सिद्ध करने वाला बहुत स्पष्ट चित्र खींचा है। गंजा विट ने अपने सिर के चारों

ओर के पके वालों को राग लगा कर काला कर दिया है, जो छप्पर की ओलनी की तरह मालूम होते हैं; अपनी मूछ में कहीं-कहीं पके दिखाई पड़ने वाले वालों को चुन-चुन कर मडसी (संदंश) से कुपट डाला है और अपनी दाढ़ी को तो बिलकुल सफाचट (निर्मगडगरड) रखता है; यत्नपूर्वक अपने सब अङ्गों को लेप लगा कर उबट रखा है मानों जर्जर ए पुराने मकान पर लीपापोती की गई हो।

वेश में ही विटों का सामूहिक रूप से अड्डा होता था। उनकी खाम बँटक को विटमण्डप कहते थे। यहाँ धूर्तों की जमात (धूर्त गोष्ठी) किसी खाम उद्देश्य से या मदिरा पीने के लिए जुटती थी। वेश में समय की सूचना देता था। विटमण्डप में किसी विषय पर परामर्श करने के लिए जो विटों की गुहार होती थी, उसे विट सन्निपात कर्म कहते थे। विटों के मरपंच की आज्ञा से कोई विट सब जगह खबर दे आता था। विटों के मुखिया को विटमहत्तर या विटमुख्य कहते थे। पादताडितक में आर्यश्यामिलक ने विटमहत्तर की सूचना से विटमण्डप में सम्मिलित होने वाले विटों की एक नाम-सूची भी दी है, वह इस प्रकार है :

काम चार, भानु, लोमश, गुप्त, अमाल्य, विष्णु-दाम, शैल्य, आर्यरक्षित, दाशेरक रुद्रवर्मा, आवन्तिक स्कन्दस्वामी, हरिश्चन्द्र वैद्य, आमीरक कुमार मयूरदत्त, मार्दगिक स्थाणु, गन्धर्वसेनक, उपायनिरिन्तकथ, पार्वतीय प्रथम अपरान्ताधपति इन्द्रवर्मा, आनन्द पुर का ऊमारमखवर्मा, सौगाष्ट का जय नन्दक, मौद्गल्य दयित विष्णु इत्यादि। इस नामावली से पता चलता है कि विट बहुत दूर-दूर से आ कर अपने-अपने देश की गणिकाओं के निमित्त वेश में रहा करते थे।

विट का लक्षण : 'दशरूप' आदि में विट को एक-विद्य कहा गया है। एकविद्य अर्थात् गीत वाद्य आदि नायक के उपयोग में आने वाली विद्याओं में से किसी एक को जानने वाला विट होता है। पादताडितक के एक प्रसंग में धूर्त द्वारा पूछे जाने पर विट ने विट-लक्षण को बहुत स्पष्ट रूप से समझाया है। उसके अनुसार विट

का प्रथम लक्षण—‘जो समय आने पर अपने पाशों की भी आहुति दे कर शत्रुओं में अपने मित्र की रक्षा करता है, विपत्ति-काल में खुद जो अपने बाहु-बल पर पूरा भरोसा रखता है और संघर्ष से बचने के लिए मदनानुर गणिकाएँ, जिमें ढूँढ़ती रहती हैं और जो याचकों के लिए खुले हाथ धन बाँटता है’, उसे ही विट समझना चाहिए।’ दूसरा लक्षण—जो वेश की सुन्दरियों द्वारा चरण-कमल के प्रहार से पूजे गए अपने सिंग को गन्तोष से इस प्रकार धारण करता है, जैसे मुकुट ही पहना हो, और जिसके धन को तृपार्त लोग पानी के समान दोनों हाथों में उछालते हैं, विटज्ञ लोग उसे ही विट के नाम से पुकारते हैं।’ इस लक्षण द्वय से प्रतीत होता है कि विट गणिकाओं के परम उपायक हो कर भी मस्त मौला हो कर वेश में विचरते थे और किसी की परवा नही करते थे।

विटों के कार्य : विटों का मार्ग दिन व्यवहारियों (लेन-देन करने वालों) के साथ भ्रमण करते बीत जाता था, दिन ढलने पर अपने किसी मित्र के घर ही भोजन कर लेते थे। और रात्रि में गणिकाओं के हर्म्य में विहार का मजा लेते थे। उनके घर में ढूँढ़ा जाए तो पीने के लिए पानी भी नहीं मिलता, लेकिन उनकी बातें खूब बड़ी-चढ़ी होती थीं। वेश-सम्बन्धी किसी प्रकार के भ्रमण में ये निधडक कूद पड़ते थे। इससे कभी-कभी इनका अंग-

भंग भी हो जाता था। ये वैथों के पास नित्य जाया करते थे और द्रव्य खर्च कर के वाजी-करण अवलेह चाहते थे, जिमसे उनके जर्जर शरीर में भी कामुकवृत्ति का उद्रेक हो जाता था। अपनी कमाई से गणिकाओं को भी पैसे दिया करते थे। कभी-कभी अपनी बढ़ती हुई मेदा को घटाने के लिए विट-लोग गुग्गुल का सेवन कर लेते थे लेकिन जब उन्हें यह ज्ञात हो जाता कि गुग्गुल मेदःक्षय तो अवश्य करता है पर इसके सेवन से इन्द्रियक्षय भी हो जाता है तो झट उसे छोड़ देते थे।

विटों का द्यूत-मभा और वेशवाट से ही अधिकतर प्रेम था। कभी यहाँ तो कभी वहाँ ये चलते-फिरते ही रहते थे। धूर्तविट सम्वाद में इनके नागरिक सम्मान का उल्लेख है, जैसा कि स्वयं अपने विषय में किसी विट ने कहा है : “जो मुझे देख लेता है वह शीघ्रता होने पर भी बात काट कर नहीं भाग जाता, जब मैं किसी भीड़ में पहुँच जाता हूँ तो सब लोग प्रसन्नता से मुझे घुमने के लिए रास्ता दे देते हैं, कार्यालय की आशंका से कोई भी मुझे देर तक नहीं रोकता, इस नगर के बड़े-बड़े लोग मेरा यशोगान करते हैं।” विट की इस उक्ति से पता चलता है कि विट केवल वेश में सम्मानित नहीं होते बल्कि परिहास प्रकृति होने के कारण उनको नागरिक सम्मान भी प्राप्त होता था।

— जगन्नाथ पाठक

जिसने अपने जीवन में कभी वृष्ट सहन नहीं किया,
उसका जीवन अश्रु ही रहा;
जो अपने जीवन में कभी असफल नहीं हुआ,
उसने न तो संघर्ष किया और न कुछ प्राप्त किया;
जो कभी रोया नहीं,
वह नहीं जानता कि हँसना किये कहने है;
जिसको कभी सन्देह नहीं हुआ,
उसने कभी विचार नहीं किया;

— रेव० जे. बी. गूडे

कथा-साहित्य में जीवन-दर्शन

कथा-साहित्य में साहित्य के दो प्रमुख रूपों का बोध होता है : उपन्यास और कहानी। यद्यपि इन दोनों साहित्यांगों की अपनी-अपनी विशिष्ट कलाएँ एवं विधाएँ होती हैं, तथापि दोनों में कथारस का तत्त्व समान महत्व के साथ विद्यमान है। स्पष्ट है उपन्यास और कहानी के माध्यम से हम सामाजिक और राजनीतिक समस्याओं का उद्घाटन अथवा व्यक्तित्व की गहराइयों में प्रवेश कर उसका मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन तो करें, पर इस प्रकार, जिससे कि कथारस को कोई क्षति न पहुँचे, अन्यथा हमारी वह रचना कथा-साहित्य के परिवेश से बाहर निकल जाएगी और उसका कलात्मक सौन्दर्य भी कम हो जाएगा। पर कथा के पीछे लेखक के निजी व्यक्तित्व का होना भी अनिवार्य है। जब तक लेखक का जीवन-दर्शन किसी कृति में परिलक्षित नहीं होता, तब तक वह रचना न तो स्थाई महत्व की हो सकती है और न उसका हमारे मन पर स्थाई प्रभाव ही पड़ सकता है। ऐसी रचनाओं को हम बम पड़ लेते हैं और भूल जाते हैं। पर कथा-साहित्य में लेखक अपने जीवन-दर्शन को भी उपर्युक्त कथारस सम्बन्धी सीमा के भीतर ही प्रस्तुत करता है।

कथाकार का उद्देश्य साहित्य के उद्देश्य से पृथक् नहीं होता। वह भी साहित्य के उद्देश्य अर्थात् जीवन की व्याख्या का समर्थक है। प्रत्येक महान् लेखक की कृति में जाने-अनजाने उसके जीवन-दर्शन की झलक आ ही आती है। इस झलक अथवा ध्वनि का कारण लेखकों में गहन जीवन-अनुभव एवं सूक्ष्म दृष्टि का होना है। जिस लेखक में जितनी गहराई और चेतना होगी एवं जिसका जीवन-अनुभव जितना विविध, व्यापक और तीव्र होगा, उतने ही अधिक प्रभावशाली ढंग से उसका व्यक्तित्व कृति में उतरेगा। स्रष्टा वास्तव में तभी कलाकार है, जब कि वह दृष्टि, अपना मन्तव्य अथवा अपनी रुचि विषयों और विचारों के प्रति व्यक्त करता है। उसके जीवन-दर्शन को प्रतिभा एवं कला सबल अभिव्यक्ति प्रदान करती है तो आस्था उसे विश्वसनीय बनाने में योग देती है।

कहानी और विशेषकर उपन्यास में लेखक के वैयक्तिक दृष्टिकोण का मिलना नितान्त स्वाभाविक है; क्योंकि उपन्यास मानव-जीवन का विस्तृत भाग घेरे रहता है। जीवन के विविध व्यापारों के प्रति स्थल-स्थल पर कथाकार अपने मत को प्रकट करता चलता है। आवश्यक नहीं, यह प्रक्रिया लेखक की सचेत अवस्था की परिचायक हो। अनजान भाव से भी, और कभी-कभी तो लेखक की अनिच्छा होते हुए भी यह सम्भव है, क्योंकि उसके मनोभाव किसी-न-किसी रूप में प्रकट हो ही जाते हैं। प्रबुद्ध पाठक उसका आभास सदा ही पा लेते हैं।

कला के क्षेत्र में इस विषय पर प्रायः विवाद किया जाता है कि लेखक अपने जीवन-दर्शन को क्या सचेत होकर इस प्रकार व्यक्त करने का प्रयत्न करे कि पाठक उसे आसानी से समझ लें अथवा वह सचेत होकर अपने को अधिक-से-अधिक छिपाए और पाठक उसके वैयक्तिक दृष्टिकोण के सम्बन्ध में सुगमता से न जान पाएँ। कथाकार अपने जीवन-दर्शन को दो प्रकार से व्यक्त करता है, पात्रों के पारस्परिक संवादों के द्वारा अथवा स्वयं प्रकट होकर वणनोत्तमक पद्धति से। उपर्युक्त दोनों प्रकारों में कला निहित है। संवाद और भाषा-शैली की कला जितनी दोषहीन और समृद्ध होगी, उतना ही स्पष्ट लेखक के जीवन-दर्शन का स्वरूप आकर ग्रहण करेगा। जब सचेत होकर लेखक अपने को छिपाएगा तो वह उपर्युक्त प्रकारों का आश्रय न लेकर केवल व्यंजना का प्रश्रय लेगा, जिससे उसके जीवन-दर्शन की मात्र ध्वनि ही प्रकट हो सकेगी। श्रेष्ठ कला उपर्युक्त दोनों रूपों में से किसमें है, इस सम्बन्ध में मतभेद हो सकता है। वास्तव में प्रबुद्ध पाठक उपन्यास या कहानी की कथा अथवा चरित्रों तक ही अपनी उत्सुकता को सीमित नहीं रख सकता वरन् उसका ध्यान लेखक के प्रति भी बाँबर बना रहता है; जिससे कि वह कथा-स्रष्टा के दृष्टिकोण के बारे में भी जान सके। कभी-कभी तो लेखक में ही सर्वाधिक रुचि होती है। अतः स्पष्ट है कि कथाकार को अपना जीवन-दर्शन सचेत होकर संवाद

और भाषा-शैली की कलात्मक परिधि में व्यक्त करना चाहिए। स्वाभाविकता और स्पष्टता की दृष्टि से यह आवश्यक भी है। पर, जब लेखक सचेत होकर अपने को अधिक-से-अधिक छिपाएगा तो उसमें अस्वाभाविकता और अस्पष्टता की आशंका अधिक रहेगी। निस्संदेह श्रेष्ठ कला ध्वनि में निहित है। पर, श्रेष्ठ कला की वाहिका यह ध्वनि सचेत होकर व्यक्त नहीं की जा सकती। वह तो अनजान भाव से ही कृति में व्यक्त होती है और उसके लिए लेखक का जीवन की गहराइयों में प्रवेश पा लेना एवं जीवन की समस्त आन्तरिक पतों की तथा असंगतियों की जानकारी प्राप्त कर लेना अनिवार्य है। ऐसे सिद्ध और अनुभवी लेखकों की कृतियों में उनके जीवन-दर्शन की ध्वनि सहज ही व्यक्त हो जाती है; उन्हें सचेत होकर प्रयत्न नहीं करना पड़ता। प्रेमचन्द की कहानी 'शतरंज के खिलाड़ी' में यह तत्व बड़े सुन्दर ढंग से व्यक्त हुआ है। उनकी समाज एवं देश के प्रति कर्तव्य-भावना विशेष रूप से इस कहानी में लक्षित हुई है। इसी प्रकार वृन्दावन लाल वर्मा के उपन्यासों में भी उनके जीवन-दर्शन की ध्वनि मिलती है। ऐतिहासिक कथानक में भी जीवन और प्रकृति के प्रति उनका दृष्टिकोण जगह-जगह व्यक्त हुआ है। उनके स्वस्थ और साहसिक मन की छाया स्थल-स्थल पर छाई दीखती है। बुन्देलखण्ड के प्राकृतिक वातावरण के मध्य जिन पात्रों को वर्मा जी रखते हैं, उनमें से अनेक की वृत्तियाँ उनके ही अनुरूप होती हैं। घुमकड़ जीवन और शिकार के प्रति उनका प्रेम उनकी अनेक कथा-कृतियों में मिलता है जो उनके व्यक्तित्व को हमारे निकट ले आता है।

प्रेमचन्द ने कहीं भी सचेत होकर अपने दृष्टिकोण को छिपाने का प्रयत्न नहीं किया है, प्रत्युत इसके विपरीत उन्होंने पात्रों के संवादों और आलोचनात्मक टिप्पणियों द्वारा अपने विचारों को प्रस्तुत किया है। ऐसा करने से उनके उपन्यासों का महत्व नहीं घटा है वरन् वे और समृद्ध ही हुए हैं। यही कारण है कि हम प्रेमचन्द के उपन्यासों के पात्रों को ही निकट से नहीं जान पाते प्रत्युत लेखक से भी घनिष्ठ परिचय पा लेते हैं। 'रंगभूमि' का सूरदास और 'गोदान' के प्रोफेसर मेहता प्रेमचन्द के जीवन-दर्शन को पाठकों के सामने प्रकट करते चलते हैं।

यद्यपि प्रेमचन्द के कथा-साहित्य पर कुछ समीक्षक यह आरोप लगाते हैं कि उनकी कृतियों में कला का अभाव है एवं वे स्थल-स्थल पर प्रचारक के रूप में आ उपस्थित होते हैं; तथापि यह निर्विवाद है कि उनके उपन्यास तथा कहानियाँ दिन-पर-दिन लोकप्रिय होती जा रही हैं। प्रेमचन्द की अधिकांश कथा कृतियों समस्या-मूलक हैं, अतः उन्हें पाठकों के सम्मुख अनिवार्य रूप से आना पड़ा है। इसमें उनकी कला को वास्तव में कोई क्षति नहीं पहुँची है, क्योंकि वे कहीं भी कथाकार के वेश में मुक्त नहीं हुए हैं। इसके विपरीत जेनेन्द्र कुमार के नए उपन्यासों में और विशेष कर 'विवर्त' में यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि किस प्रकार उपन्यासकार जेनेन्द्र दार्शनिक के वेश में उतर आए हैं। इससे उपन्यास के कथारम को क्षति पहुँची है। कथाकार कलाकृति में अपने दृष्टिकोण को निस्सन्देह जागरूक हो कर व्यक्त करे, पर इस बात का ध्यान रखे कि कहीं उस सीमा का अतिक्रम उससे न हो जाए जो किसी कथा-कृति को वास्तव में कथा-साहित्य बनाती है। इसी प्रकार अमृतराय के उपन्यास : 'बीज' में राजनीतिक दृष्टिकोण इतने विस्तार से व्यक्त किया गया है कि जगह-जगह कथा की शृंखला टूट-टूट गई है। संवाद और भाषा-शैली की कला में समृद्ध होते हुए भी दृष्टिकोण अभिव्यक्ति के इस अतिरेक के कारण 'बीज' की औपन्यासिक-कला कमजोर हो पड़ी है। 'अज्ञेय' ने भी अपने उपन्यासों को अनपेक्षित बोद्धिकता से बोझिल बना दिया है। यशपाल के प्रारम्भिक उपन्यासों में भी उनकी सिद्धान्त-प्रियता अत्यधिक मुखरित हुई है। अतः कथा-कृतियों में लेखक का जीवन-दर्शन संयमित किन्तु स्पष्ट भाव से उतरना चाहिए मात्र इस दिशा में जागरूक रहने की आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में एक और महत्वपूर्ण तथ्य की ओर ध्यान रखना अनिवार्य है। प्रत्येक-कृति का कोई निश्चित उद्देश्य होता है। लेखक अपने समस्त विवरण को उसी उद्देश्य की पूर्ति के निमित्त प्रस्तुत करता है। पर, कभी-कभी यह भी देखा जा सकता है कि लेखक अपने मूल उद्देश्य से हट कर अनपेक्षित विवरण देना शुरू कर देता है। यह प्रवृत्ति कथा-कृति के लिए और भी घातक है। इससे कथा का कम ही भंग नहीं होता वरन् लेखक की अपने मूल-उद्देश्य के प्रति उपेक्षा भी मालूम पड़ती है।

स्पष्ट है, यह उपेक्षा-भावना उसकी कृति को अत्यधिक घटिया बना देती है। उस कृति में यह विदित ही नहीं हो पाता कि आखिर लेखक क्या कहना चाहता है एवं वह किस बात को प्रधानता देता है और कौन-सी बात वास्तव में उसके लिए गौण है। हम यह ही नहीं जान पाते कि लेखक क्या कहना चाहता है अथवा वह हमारे सामने किस दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने का विचार रखता

है तो फिर उसकी कृति क्या तो अर्थ रखेगी और क्या अपना पभाव डालेगी? कथा-साहित्य में कथाकार के जीवन-दर्शन को केन्द्रीय महत्त्व मिलना चाहिए। जो प्रसंग अथवा संवाद, लेखक के केन्द्रीय-भाव से पाठकों का ध्यान हटाते हैं, उन्हें उपन्यास या कहानी में स्थान कदापि नहीं मिलना चाहिए, इसीमें कथाकार के जीवन-दर्शन की अभिव्यक्ति की मार्थकता और उपादेयता है।

रामकुंज, विश्वविद्यालय-मार्ग
उज्जैन (मध्य-प्रदेश)

—डा० महेन्द्र भटनागर

भोजपुरी कहावतें

आन्धर कूटुर बनाये भूँके

अन्धा कुत्ता वायु की खड़बड़ाहट से भौकता है

आगा चले न पाछा, गूर ही लपेटे

न आगे चलता है न पीछे। यॉभी हुई गस्ती को पैरों में लपेटता है।

करनी न धरनी, भिया आंठ बिदरनी

काम न धाम। हाँठ बिनकानेवाली पुत्री

खेत खाय गदवा, मरल जाय जेलवा

खेत खाए कोई और मार खाए कोई

छीपा भुलइला पर गगरी में ढूँढ़े

थाली भूलने पर गगरी में ढूँढ़ना

जेकर बानर ऊहे खेलावे, दूसर खेलावे न कटे धावे

जिसका बन्दर वही खिला सकता है, दूसरा खिलाए तो काटने को दौड़ता है

डोली न कहार वीवी, बइठल बाड़ी नइआर

किसी कार्य के लिए साधन तो प्राप्त नहीं परन्तु उसको करने की धुन है।

रतसर,

बलिया (उ. प्र.)

—वीरेन्द्रकुमार श्रीवास्तव

सब में एक प्राण

(मध्यभारत के किसी भाग में छोटा-सा शहर। उसमें एक माधारणसा होटल। मंच पर दाहिनी ओर पास ही कोने में काउण्टर, जिस पर मैनेजर बैठता है। सामने बीच में मेज कुर्सियाँ जिन पर ग्राहक बैठते हैं। सामने दाहिनी ओर ऊपर जाने का जीना, बाईं ओर होटल के भीतर जाने का द्वार। इसी ओर जरा पास स्नानागार बना है। उसके पास बाहर से आने का द्वार है। इन दोनों के बीच में एक मेज लगी है। उस पर एक सुन्दर कलश में जल भरा है और एक खुले बरतन में बिस्कुट। परदा उठने पर मंच पर कोई नहीं है। सब कहीं स्वच्छता और सुघड़ता है। जैसे, उत्सव हो। इच्छानुसार सजावट की जा सकती है। सामने दीवार की घड़ी सवेरे के सात बजाने वाली है।

तभी होटल का मालिक वहाँ प्रवेश करता है। साथ में एक भद्रजन हैं।)

भद्रजन : (चारों ओर देखकर) सुन्दर, अति सुन्दर। आज इस नगर में मेरा आना सफल हुआ। कितना स्वच्छ, कितना सुन्दर स्थान है। हाँ तो बन्धु ! आज कोई उत्सव है।

मालिक : जी हाँ आज एक बहुत बड़ा उत्सव है। ऐसा उत्सव जो कभी हुआ न होगा, न भूतो न भविष्यति... संस्कृत आती है आपको।

भद्रजन : न भूतो, न भविष्यति... इतनी तो आती है। हाँ तो बन्धु ! आज कौनसा उत्सव है।

मालिक : जी हाँ उत्सव है। आप इतना भी नहीं जानते कि उत्सव देखा जाता है, उसका बखान नहीं किया जाता। आपका कमरा ऊपर है। नं० १०

भद्रजन : (चकित होने का नाटक) नं० १० ! हाँ तो बन्धु नं० १० ...

मालिक : जी हाँ नं० १०। उसमें एक खिड़की है।...

भद्रजन : (पूर्ववत्) मेरे कूदने के लिए। बन्धु, आपने मुझे पहचाना खूब।

मालिक : जी हाँ, मैं खूब पहचानता हूँ। जिन्दगी भर नञ्च टटोली है।

भद्रजन : अहा, तो आप बैद्य भी हैं। ठीक बन्धु, मैं जरा खिड़की देख आऊँ, कूदने में कैसा सुभीता है ? (जीने की ओर जाता है पर तुरन्त लौटता है।) हाँ तो बन्धु, उत्सव की बात रह गई। मैंने सुना है कि आपके होटल का शुद्धि-संस्कार हुआ था। मंत्र किसने पढ़े थे ?

मालिक : (चिढ़ कर) जी हाँ, मंत्र पढ़े थे।

भद्रजन : यही तो पूछता हूँ। बन्धु, किसने पढ़े थे।

मालिक : (चिढ़ कर) आपने।

भद्रजन : मैं तो बन्धु। आज पढ़ूँगा। उस दिन...

मालिक : (एकदम) जी हाँ, उस दिन। मैं पूछता हूँ कि आप हैं कौन ? आपको कैसे पता है, उन सब बातों का।

भद्रजन : (हँस कर) बन्धु ! ताड़ने वाले कयामत की नज़र रखते हैं। देखा बन्धु आपने, मुझे उर्दू भी आती है। यूँ आप कहें तो बंगला भी बोल सकता हूँ “तोमार दोक्खिने जे फुलेर झुड़िटा आछे ओटा आनो तो” तुम्हारे दाहिने जो फूलों की टोकरी है, उसे लाओ तो (मालिक चकित होकर फूलों की टोकरी को देखता है) रहने दीजिए, रहने दीजिए। परिचय हो जाने पर ही गले में डालना। हाँ तमिल सुनेंगे, “तन्नि कौडु वांगो” पानी लाओ। मलयालम में पानी को “विलवम” कहते हैं। ओप्रेजी में वाटर, बंगला में जल, मगर होता वह पानी का पानी वह पतला बहने वाला रंगहीन गन्धहीन तरल-पदार्थ दो हाडड्रोजन, एक आक्सीजन...

मालिक : (प्रभावित) ज़मा करिए। आप तो सर्वज्ञ हैं, आपको सब कुछ मालूम है पर आप हैं कौन ?

भद्रजन : नम्बर दस (तेजी से जीना चढ़ जाता है।)

मालिक : ओफ़फ़ो ओफ़फ़ो (एकदम घण्टी बजाता है।) कोई है।

(महसा ऊपर से, अन्दर के द्वार से, स्नानागार से होटल के सेवक सिर निकाल कर देखते हैं) सब तैयार हैं।

मुख्य सेवक : जी हाँ ! आ जाएँ।

मालिक : अभी रुको ।

मुख्य सेवक : जी दरवाजे पर बड़ी भीड़ है ।

मालिक : होने दो, मैनेजर साहब संभालेंगे ।
(धीरे से) ये साहब कौन है ?

मुख्य सेवक : जी मुझे तो नहीं मालूम । वैसे लगते बड़े आदमी हैं । तीन बड़े-बड़े बक्से हैं । पाँच अर्दली हैं और...

भद्रजन : (ऊपर से) हाँ तो बन्धु । कमरा सच-मुच सुन्दर है । हम प्रमन्न हुए । अब जरा चाय भिजवा दीजिए ।

मुख्य सेवक : सब इन्तजाम कर दिया है, हुजूर । अभी लाता हूँ । (जाता है)

भद्रजन : हम बहुत खुश हुए । (नीचे उतर आता है) हाँ तो बन्धु ! सुना है कि कुछ दिन पहले आपने अपने होटल में अवर्णों को आने दिया था ।

मालिक : जी हाँ ! अवर्ण अब कौन है ? कानून ने सबको वर्णहीन कर दिया है ।

भद्रजन : लेकिन बन्धु ! मन एक नहीं हुए ।

मालिक : जी हाँ, उममें देर लगती है ।

भद्रजन : हाँ तो बन्धु ! इसीलिए सवर्णों की पंचायत ने आपको धमकाया, डराया, आप पर जुर्माना किया और सारे होटल को, होटल की प्रत्येक वस्तु को, दीवारों तक को धोने की आज्ञा दी...

मालिक : जी हाँ, जी हाँ...

भद्रजन : अच्छा हुआ बन्धु मकड़ी के जाले उब गये । मेज-कुर्सियों का रूप निखर आया । शायद फिर से रंग करवाना पड़ा है ।

मालिक : जी हाँ, मैंने सब-कुछ पलट दिया है । सारे होटल की काया-पलट दी और अब...

भद्रजन : बन्धु ! अब आप पंचायत की काया-पलट करने वाले हैं ।

मालिक : जी हाँ, आज मैं सवर्ण पंचों की काया पलट दूँगा । बन्हीं के हथियारों से उन्हें परास्त कर दूँगा ।

भद्रजन : (चक्किन) हाँ तो बन्धु, हथियार भी हैं । दिखाई तो नहीं देते ।

मालिक : जी हाँ, वे अभी दिखाई नहीं देते पर देखते रहिए, वे अभी प्रकट हुए जाते हैं ।

(बाहर कोलाहल मचता है । द्वार पर थपथपाहट होती है । वह जोर से पुकारता है ।) कोई है ।

(एक बार फिर चारों ओर से सेवक भाँकते हैं ।)

मालिक : (एकदम) तैयार हो जाओ । और दरवाजा खोल दो ।

मुख्य लेखक : जी अभी खोलता हूँ ।

(एंट्रेंशन जाता है और नाटकीय ढंग से द्वार खोलता है । मैनेजर के पीछे १५-२० मनुष्य अन्दर आकर तेजी से कुर्सियों पर बैठने को बढ़ते हैं । तभी मैनेजर पुकारता है ।)

मैनेजर : बहनो और भाइयो ! कुर्सियों पर बैठने से पहले मैं आपसे कुछ निवेदन करना चाहता हूँ । (सब खड़े हो जाते हैं । भद्रजन भी उन्हीं में हैं, मुस्कराता है) यह होटल नया नहीं है । पिछले वर्षों से आप लोगों की सेवा कर रहा है । आपके सुख-दुख का साथी रहा है । आपद-विपद में, भूप-वर्षा में, आँधी-पानी में इसने सदा सबको शरण दी है । आपकी थकावट दूर की है । (भद्रजन पुकार उठते हैं 'हियर' 'हियर' और ताली पिट जाती है ।) बहनो और भाइयो ! आपने हमारी तुच्छ सेवा को सराहा है । हम आभारी हैं । लेकिन मैं कहने जा रहा था, क्या कहने जा रहा था, हाँ, यह कहने जा रहा था कि पिछले कुछ दिनों से होटल के शान्त लम्बे जीवन में एक तूफान आ रहा है । इस तूफान ने हमें झकझोर दिया, झनझना दिया । मतलब यह कि सोते से जगा दिया । आज होटल के यशस्वी मालिक ने (नाटकीय ढंग से मालिक की ओर इंगित करता है । मालिक मुस्कराता है, तालियाँ पिट जाती हैं) एक क्रान्तिकारी कदम उठाया है । वह कदम ऐसा क्रान्तिकारी है कि उससे न केवल आप, न केवल यह शहर, न केवल हमारा प्रान्त बल्कि साग देश झनझना उठेगा (पाज) आप सोचते होंगे वह क्या क्रान्तिकारी, कदम है । क्या क्रान्तिकारी वो वो... बहरहाल मैं अब आपके और उम कदम के बीच में नहीं खड़ा होना चाहता । आज से इस होटल में सब मनुष्यों को आने की अनुमति होगी । सबर्णों को भी, अवर्णों को भी । सबर्ण केवल पैसे देकर खा पी सकेंगे । परन्तु जो अवर्ण हैं; उनके लिए स्नान का प्रबन्ध भी है । खाने में उन्हें चाय के साथ बिस्कुट मुफ्त मिलेंगे । (भद्रजन फिर 'हियर' 'हियर' करते हैं, तालियाँ पिटती हैं) और सुनिए । जो अवर्ण लोग अस्वस्थ होंगे, उनके लिए नहाना आवश्यक नहीं होगा ।

उनके लिए पवित्र गंगा जल के व सोने के पानी के छींटे काफ़ी होंगे। उसके बाद सब साथ खाएँगे, साथ खेलेंगे, साथ गाएँगे साथ नाचेंगे...

एक ग्राहक : और साथ मरेंगे।

मैनेजर : जी हाँ, और साथ मरेंगे। धन्यवाद क्योंकि मरने के बाद की कहानी ये मित्र बताएँगे।

(मैनेजर बैठ जाता है। हँसी। फिर तालियाँ पिटती हैं। उसके बाद पूर्ण सजाटा छा जाता है। सब उसी तरह एक दूसरे का मुँह देखते हैं। फिर भद्रजन तेज़ी से स्नानागार की ओर बढ़ते हैं।)

भद्रजन : हाँ तो बन्धु, मुझे यह भाषण सुनकर बहुत खुशी हुई। आइए जो स्नान करना चाहे।

मैनेजर : पर यह सुविधा केवल अवर्णों के लिए है।

भद्रजन : मैं अवर्ण हूँ।

मालिक : जी हाँ, आप अवर्ण हैं। इसका प्रमाण...

भद्रजन : प्रमाण कुछ देर बाद दूँगा। आइए अवर्ण बन्धुओ ! यहाँ एक साथ पाँच जन नहा सकते हैं। आइए...

(चलिए, चलिए, कहते हुए पाँच व्यक्ति स्नानागार में जाते हैं)

एक ग्राहक : (तेज़ी से) लेकिन यह सब अन्याय है, ठीक है। हमे धर्मश्रद्धा करने का षड्यन्त्र है।

दूसरा ग्राहक : बेशक है; दूषित चाल है।

(शोर जिसमें दो व्यक्ति और शामिल हो जाते हैं।)

मालिक : जी हाँ दूषित चाल है। आप मत फैसिए इस चाल में। जाइए।

पहला ग्राहक : जाइए। कैसे जाइए।

मालिक : पैरों से, जी हाँ क्या ? पैरों से जाइए... जाइए। बुलाया किसने था।

दूसरा ग्राहक : बुलाता कौन। तुमने बुलाया। तुमने होटल खोला।

मालिक : जी हाँ खोला है। खुला हुआ है। कोई शक है आपको। मेरा होटल है, मेरे नियम हैं, जैसे चाहूँगा, चलाऊँगा।

दूसरा ग्राहक : जैसे चाहूँगा, चलाऊँगा। कैसे चलाऊँगा। शहर को प्रष्ट करोगे।

मालिक : जी हाँ कहूँगा, कहूँगा, कहूँगा।

आपको होना हो तो आ जाइए।

तीसरा ग्राहक : मित्र काहं को अग्नि भड़का रहे हो। भूख और बढ़ेगी। (मुड़कर) मैनेजर साहब ! आप इनके लिए भी बिस्कुटों का प्रबन्ध कर दें तो ये शान्त हो जाएँ।

मालिक : जी हाँ कर दूँगा, लेकिन ये अवर्ण बन जाएँ।

दूसरा ग्राहक : (चाँख कर) क्या कहा, मैं अवर्ण बनूँ। तुम्हारी यह हिम्मत, तुमने समझा क्या है। मैं...मैं...मैं तुम दुष्टों को.....

पहला ग्राहक : ये दुष्ट इस तरह नहीं मान सकते। अभी उस दिन पंडित जी के चरण लू रहे थे। गिड़-गिड़ा रहे थे। चलो, उन्हीं को बुला कर लाते हैं।

दूसरा ग्राहक : और ठाकुर साहब को भी। फिर देखूँगा तुम्हारा साहस। तुम्हारा स्नानागार। तुम्हारे बिस्कुट.....

(तेज़ी से जाते हैं। पीछे-पीछे तीन-चार और भी हैं। तीसरा ग्राहक तेज़ी से कहता है।)

तीसरा ग्राहक : अजी बिस्कुट तो अभी लेते जाइए। पण्डित जी भी देख लेंगे। अच्छा मैं ही ले चलता हूँ। (जाता है) अभी आया मित्रो।

(तभी स्नानागार से सब लोग आते हैं। दूसरे जाते हैं। पहले वाले बिस्कुट लेकर मेजों पर जाते हैं।)

भद्रजन : बन्धु ! यह कैसा शोर था।

मालिक : जी हाँ शोर था। शोर तो आप अभी देखेंगे। इसी शोर के लिए मैंने आज यह उत्सव रचा है। आप देखते रहिए, मैं उन्हें कैसा छकाता हूँ।

भद्रजन : पर किन्हें बन्धु ?

मालिक : उन्हीं को जो विरोध करते हैं। जो समाज के शत्रु हैं, देशद्रोही हैं, राज के शत्रु हैं। जी हाँ उन्हीं को.....

भद्रजन : पर बन्धु ! यहाँ तो कोई नहीं है।

मालिक : अभी आए जाते हैं। जी हाँ, देख लेना, अभी आए जाते हैं। मैं उन्हें उन्हीं के शस्त्रों से पराजित करूँगा (हँसता है) उन्हीं के शस्त्रों से.....

(तेज़ी से तीसरे ग्राहक का प्रवेश)

तीसरा ग्राहक : शहर में बड़ा शोर है। सब लोग आपके होटल को लेकर बहस कर रहे हैं। कुछ लोग बड़े क्रुद्ध हैं।

मैनेजर : क्या वे लोग इधर आ रहे हैं।

तीसरा ग्राहक : हाँ कुछ लोग आने को कह रहे हैं। वे परिङत जी को बुलाने गए हैं।

मालिक : कोई भय नहीं। जी हाँ आने दो। (कर्मचारियों से) तुम अपना काम करने जाओ।

मैनेजर : नहीं, नहीं, ऐसा नहीं होगा। मैं पुलिस चौकी पर जाता हूँ।

मालिक : नहीं, नहीं, जी हाँ, नहीं। तुम कहीं नहीं जा सकते।

(मैनेजर रुकता नहीं तेजी से जाता है) ओपफो डरपोक कहीं का। पुलिस को बुलाएगा। पुलिस क्या करेगी? उम दिन इसी के कारण मुझे नीचा देखना पड़ा था। माफ़ी माँगनी पड़ी थी। नहीं तो मैं उन्हें तभी धराशायी कर देता...

भद्रजन : कोई बात नहीं बन्धु। आज कर लीजिए। पुलिस नहीं आएगी।

मालिक : नहीं आएगी। जी हाँ, क्यों नहीं आएगी। आपको क्या पता?

भद्रजन : मैं सर्वज्ञ जो हूँ बन्धु। आपने तो कहा था।

मालिक : (चकित) आप, जी हाँ। आपको कहीं देखा है।

भद्रजन : (जोर से हँस कर) खूब बन्धु खूब। अजी सवरे ही तो देखा था। नम्बर दस में ठहरा हूँ।

मालिक : जी हाँ नम्बर दस। लेकिन वहाँ नहीं, कहीं और, कहाँ-कहाँ...

(तेजी से कई व्यक्तियों का प्रवेश। परिङत जी, ठाकुर साहब, दोनों ग्राहक और तीन-चार और परिङत लोग)

पण्डित जी : कहाँ, कहाँ है इस होटल का मालिक?

ठाकुर साहब : कहाँ है वह घुजा, धूर्त, विश्वासघाती।

मालिक : जी हाँ घुजा, धूर्त, विश्वासघाती। सेवक उपस्थित है आज्ञा कीजिए।

(नाटकीय ढंग से झुकता है)

पण्डित जी : यह सब क्या सुना जा रहा है।

मालिक : सुना जा रहा है, जी हाँ, सुनेंगे आप, मैं तो कह रहा हूँ।

ठाकुर साहब : हम्बे, तुम तो कह रहे हो। क्या

कह रह हो?

मालिक : जो आप मुन रहे हैं। जी हाँ, जो सुन रहे हैं, वही कह रहा हूँ।

पण्डित जी : परन्तु मैं पूछता हूँ अवर्णों को होटल में बुलाने का साहस तुम्हें हुआ कैसे?...

मालिक : ऐसे हुआ। जी हाँ परिङत जी, ऐसे हुआ, जैसे आपने बताया।

पण्डित जी : क्या कहा रे? जैसे मैंने बताया।

ठाकुर साहब : यानी तुम परिङत जी के कहे के अनुसार कर रहे हो।

मालिक : जी हाँ, परिङत जी ने शास्त्र के अनुसार बताया है और मैंने परिङत जी के कहे के अनुसार किया है।

पण्डित जी : (क्रुद्ध) मैंने...मैंने कब...क्या बताया?

मालिक : (दृढ़ विश्वस्त स्वर) परिङत जी क्रोध न कीजिए। हाँ, बैठ जाइए। अरे, सुनो जरा नीबू-पानी तो लाओ। हाँ जी लाओ, विशुद्ध गंगा जल में बनाना।

पण्डित जी : लेकिन...लेकिन.....।

मालिक : जी हाँ लेकिन। तो लेकिन की चर्चा कहूँगा। परिङत जी पिछली बार अवर्णों को चाय पिलाने के अपराध में आपने मेरे होटल का शुद्धिकरण किया था। क्यों ठाकुर साहब।

ठाकुर साहब : हम्बे, किया था और...

मालिक : (नाटकीय ढंग से रोक्ता है) जी हाँ इतना ही काफ़ी है। क्यों परिङत जी, आपने सारे होटल को, मेज-कुर्सियों को, दीवारों को धुलवाया था।

पण्डित जी : वह आवश्यक था लेकिन...

मालिक : (पूर्ववतः) जी हाँ इतना ही काफ़ी है। इससे सिद्ध होता है कि धोने से शुद्धि हो जाती है।

ठाकुर साहब : हम्बे हो तो जाती है।

मालिक : जी हाँ हो जाती है, क्यों पण्डित जी।

पण्डित जी : हो जाती है पर...

मालिक : जी हाँ, इतना ही काफ़ी है। जी हाँ, जब धोने से शुद्धि हो जाती है तो मैंने अवर्णों को धोने का प्रबन्ध कर दिया है।

(सब चौंकते हैं)

पण्डित जी : क्या। क्या!!

ठाकुर साहब : दिके क्या कहा लाला जी।

भद्रजन : अद्भुत बन्धु ! अद्भुत...हियर-हियर (ताली पिटती है)

मालिक : (गर्व से) मैने कहा धन्यवाद । जी हाँ, मैने कहा है कि जब धोने से मेज-कुर्सी दीवार शुद्ध हो जाती हैं तो इन्सान क्यों नहीं हो सकता । इसलिए मैने उनके लिए स्नान का प्रबन्ध किया है । गंगा-जल भी है ।

पण्डित जी : (तेज हो कर) तो यह चाल चली है । लेकिन मैं कहता हूँ ऐसा नहीं हो सकता । ये सब तो निर्जीव पदार्थ हैं ।

ठाकुर साहब : हाँ, नहीं हो सकता । यह कैसे हो सकता है । वाह ये चीजें तो बेजान हैं । बोलो लोगों, बोलो...

कई व्यक्ति : (एक साथ) हाँ नहीं हो सकता । नहीं हो सकता ।

मालिक : कैसे नहीं हो सकता । जी हाँ, आप शोर न मचाएँ । यह होटल है सराय नहीं । सुनि पंडित जी, सुनि सब लोग । बचपन में जब कभी हम भंगी-चमार से छु जाते थे तो हमारी माँ सोने की अँगूठी पानी में डाल कर उसके छीटे दे कर हमें शुद्ध कर लेती थी...

ठाकुर साहब : हम्मे कर तो लेती थी । हम भी कर लेते हैं...

पण्डित जी : हम भी कर लेते हैं पर वह तो सबर्णों की शुद्धि है, ठाकुर साहब और ये हैं अवर्ण...

ठाकुर साहब : हाँ, हाँ, ये अवर्ण हैं । नहीं, ऐसा नहीं हो सकता । बोलो भाइयो, बोलो—नहीं हो सकता ।

कई (एक साथ) : नहीं हो सकता । नहीं हो सकता !!

भद्रजन : बन्धु । शास्त्रार्थ अद्भुत है । हम प्रसन्न हुए लेकिन प्रार्थना है कि शोर न किया जाए । हाँ, अब आगे चलिए...

पण्डितजी : ये कौन साहब हैं ?

भद्रजन : नम्बर दस बन्धु । नम्बर दस कमरे का निवासी हूँ ।

मालिक : जी हाँ उसे छोड़िए । मैं जानता था कि आप नहीं मानेंगे । इसलिए पूरी तैयारी के साथ उत्सव मनाने का प्रबन्ध किया है ।

भद्रजन : और उस उत्सव का पुरोहित मैं हूँ ।

जी हाँ बन्धु । आगे चलिए ।

मालिक : पण्डित जी, आप तो शास्त्रज्ञ हैं, वेद-पाठी हैं, पुराण-इतिहास सब आपने पढ़े हैं । आपकी विद्वत्ता की धाक दूर-दूर तक है ।

ठाकुर साहब : हम्मे साथ, घणी धाक है, घणी ।

मालिक : जी हाँ घणी है तभी तो इन्होंने शास्त्र का अध्ययन करके बताया था कि जो जैसा अन्न खाता है वैसा ही हो जाता है । भीष्म, द्रोण जैसे महात्मा दुर्योधन का अन्न खाकर भ्रष्ट हो गये थे और...

पण्डितजी : क्या...क्या...

ठाकुर साहब : दिके बात तो पते की कही है ।

मालिक : जी हाँ, पते की है ही । पण्डित जी क्या कभी-कभी वेपते की बात कहते हैं । सो पंचो । शरीर की शुद्धि के लिए स्नान का प्रबन्ध है और मन-प्राण की शुद्धि के लिए अन्न का । मैने प्रत्येक अवर्ण को चाय के साथ मुफ्त बिस्कुट देने का प्रबन्ध किया है । वह देखिए...जब वे सर्वर्ण का अन्न खाएँगे तो सर्वर्ण हो जाएँगे ।

(बिस्कुटों के पास खड़ा सेवक बिस्कुट उठा कर दिखाता है । सब चण-भर विमूढ़ से देखते हैं)

भद्रजन : बन्धु । तुम धन्य हो । तुम्हारे तर्क धन्य हैं । दो भाई, सब अवर्णों को बिस्कुट दो । (कहता कहता ऊपर जाता है) मैं अभी आता हूँ...

ठाकुर साहब : अब बोलिए पंडितजी ।

पण्डितजी : बोलें क्या । ठोंग, यह सब ठोंग है । अधर्म है विश्वासघात है । भला कहीं इन तर्कों से ऊँच-नीच दूर हो सकती है । छोटे-बड़े, ठाकुर चमार एक हो सकते हैं । क्यों ठाकुर साहब...

ठाकुर साहब : कभी नहीं हो सकते । ठाकुर-चमार कभी एक नहीं हो सकते ।

पण्डित जी : हं, हं, लाला जी । बड़े चालबाज हैं आप । बातों ही बातों में ईश्वर की बनाई समाज-रचना को उड़ाना चाहते हैं । मैं कहता हूँ निकालो सब अवर्णों को, शुद्ध करो होटल को । ...नहीं करोगे...

मालिक : जी हाँ, नहीं कहूँगा । होटल अशुद्ध नहीं है, अशुद्ध आप हैं । चाहें तो आपको शुद्ध कर सकता हूँ ।

पंडित जी : क्या, क्या कहा ? ठाकुर साहब लातों के भूत बातों से नहीं माना करते । इस होटल को

नष्ट करना होगा।

(मैनेजर का घबराये हुए प्रवेश)

मैनेजर : सर्वनाश ! बिल्कुल सर्वनाश ! याने में पुलिस का एक भी सिपाही नहीं है।

ठाकुर साहब : (अट्टहास) पुलिस ! ठाकुर के रहते पुलिस। मैनेजर साहब और लाला जी.....

मालिक : (काँप कर) जी हाँ, बात कीजिए। मैने कुछ गलत कहा हो तो बताइए। देश के विधान...

पंडित जी : देश का विधान देश में लगता होगा। यह देश नहीं शहर है। इस शहर में शहर का विधान लागू होगा। ठाकुर साहब !

ठाकुर साहब : (जोर से) देखते क्या हो ? नहीं मानते तो भगा दो अवधियों को..... शुद्ध कर लो होटल को.....

कई व्यक्ति : (एकसाथ) निकलो, निकलो।

दूसरा दल : हम क्यों निकलें, तुम निकलो।

पहला दल : नहीं मानोगे तो...

(शोर बढ़ता है। लोग इधर-उधर भागते हैं, कि तभी भद्रजन आकर सीटी बजाते हैं।)

भद्रजन : बन्धुओ सावधान।

(सब चौंक कर देखते हैं। ऊपर-नीचे, इधर-उधर, पुलिस पस्तौल ताने खड़ी हैं। सब ठगे-से स्तब्ध रह जाते हैं। मालिक की आँख सहसा चमकती है।)

मालिक : आप... आप...

भद्रजन : मैं नम्बर दस, कप्तान पुलिस। हाँ तो बन्धु। आपने गलती की है। बीसवीं सदी में अकेला शास्त्र काम नहीं देता। बिजली के दोनों तार मिलते हैं, तभी प्रकाश होता है। नैगेटिव और पोजिटिव। इसी तरह आज जब शास्त्र और शस्त्र मिलते हैं तभी क्रान्ति की शक्ति पूर्ण होती है।

मालिक : लेकिन आपको मालूम कैसे हुआ ?

भद्रजन : बन्धु। मैंने कहा था न कि ताड़नेवाले क्रयामल की नजर रखते हैं। मैनेजर संस साहब ने पुलिस को लिखा, उन्होंने मुझे। सारी कहानी लिख दी। अच्छा बन्धुओ पंडित जी, ठाकुर साहब, और आप

सब चलिए। सिपाहियों, ले चलो इन्हें।

(सब काँपते हैं। बहुत से लोग उन्हें चिढ़ाते हैं।)

कई लोग : निकालिए हमें, निकालिए अब।

भद्रजन : नहीं बन्धुओं, ऐसे नहीं। मैं चाहता हूँ। ये अब भी छूट जाएँ। आखिर मैं इसी नगर का तो हूँ। इन्हें कैसे गिरफ्तार करें ? (सब फिर काँपते हैं)

मैनेजर : क्या...

मालिक : मैंने कहा था न कि कहीं देखा है। हूँ...हूँ...जी हाँ आप कौन हैं ?

भद्रजन : मैं बोधा चर्मकार, एक्स एम. एल. सी. का बेटा गज्जू। गजराजसिंह वर्मा कप्तान पुलिस।

मालिक : हैं गजराजसिंह। वही तो, वही तो इतनी देर से पहचान रहा था। लो बोलो अपने शहर का कप्तान पुलिस...

ठाकुर : (कम्पित) बोधा... गजराजसिंह... कप्तान साहब...

पण्डित जी : (ठगा-सा) बोधा चर्मकार... कप्तान पुलिस...

भद्रजन : अगर आप लोग मेरे साथ चाय पी कर मुझे कृतज्ञ कर सकें तो न केवल आपको कोई पैसा ही देना होगा, बल्कि आप मुक्त भी हो जाएँगे। मंजूर है, आप मौन हैं। मौन सम्मति लक्षण। तो मंजूर है। लाला साहब। चाय का प्रबन्ध करो। लेकिन नम्बर दस नहीं, नम्बर एक। तुरन्त सब के लिए मेरी ओर से

मालिक : (हर्ष) जी हाँ नम्बर एक, लेकिन जीत तो नम्बर दस की हुई है। खैर आपकी ओर से, नहीं, नहीं, यह कैसे हो सकता है। मेरे नगर का छोकरा मुझे छुका सके। मैनेजर साहब... हैड बॉय... अब तुम सब कहाँ हो, तुरन्त बढ़िया से बढ़िया माल लाओ। आओ पंडित जी, आपका ही शिष्य हूँ। आओ ठाकुर साहब आपकी ही प्रजा हूँ। आओ भाइयों, जी हाँ, सब आओ सब। (मस्ती में गा उठता है) सब है समान जी हों, सब है समान, सब में एक प्राण सब मिल कर हरि नाम गाओ।

जर्मन-साहित्य की वीर गाथाएँ^१

२

विदेशी वीर गाथाएँ : राष्ट्रीय वीर गाथाएँ, जिनका वर्णन पीछे किया जा चुका है, १३ वीं शताब्दी की प्रतिनिधि रचनाएँ नहीं हैं; उनका उल्लेख केवल राष्ट्रीयता के नाते महत्वपूर्ण माना जा सकता है। वास्तव में जर्मन-वीर गाथाएँ जो साहित्यिक दृष्टिकोण से महत्व रखती हैं, कुछेक ऐसी विदेशी श्रोत्रपूर्ण कथाएँ हैं जो अधिकतर ब्रिटेन के राजा आर्थर के दरबार से सम्बन्धित हैं। इन विदेशी गाथाओं के मूल रूप में कल्पना-बाहुल्य दिखाने की इतनी गुंजाइश है कि कवियों ने साहसिक कार्यों का उल्लेख बिना उद्देश्य किए जाने वाले लम्बे-लम्बे पर्यटनों के बखाने के साथ द्रुत-युद्ध, इन्द्र-जाल और तांत्रिक क्रियाओं को स्थान दे कर इन कथाओं के मूल रूप को क्या से क्या कर दिखाया है। आर्थर नामक एक ब्रिटिश राजकुमार का काल ६ ठीवीं शताब्दी माना जाता है; उसके दरबार में ऐसे वीर पुरुषों का अच्छा-खासा जमघट था जो अपने करिश्मे दिखाने की गरज से चारों ओर गए और विशेषतः यूरोप में अपने करतबों की कहानियाँ छोड़ आए। इन वीरों में बारह सरदारों की एक मजलिस थी, जिसे गोल-मेज नाम से पुकारा जाता था। अतः यह बात असंदिग्ध है कि कालांतर में कवियों ने इन वीर पुरुषों के चरितों को लेकर अपने-अपने साहित्य में वीररस प्रधान काव्य रचे। मिल्टन जैसा महान् अंग्रेजी का कवि तक राजा आर्थर के योद्धाओं की कथाओं में काफ़ी दिलचस्पी रखता था और उसका विचार एक ऐसे महाकाव्य को रचने का था, जिसमें इन कथाओं को फिर से सजाया जा सके। मनुष्य स्वभावतः कल्पना के धनी और स्वतंत्रता के पुजारी होते हैं, और राजा आर्थर के सरदारों के साहसिक कार्यों में कल्पना और स्वतंत्रता दोनों की व्याख्याओं के लिए असीम क्षेत्र पड़ा हुआ है। अतः १३ वीं शताब्दी की ऐसी दो प्रमुख वीर-गाथाओं : 'पार्सिवाल' और 'ट्रिस्टान' में राजा आर्थर से सम्बन्धित कथाओं को अधिकाधिक स्थान दिया गया है, यद्यपि इन पर प्राल-

गाथा (जिमका वर्णन 'पार्सिवाल' की व्याख्या में दिया गया है) और कालोंविजिम्मा के प्राचीन मठों से सम्बन्धित कथाओं का प्रभाव भी स्पष्ट मिलता है।

'पार्सिवाल' गाथा का रचयिता वोल्फ्राम नामक एक ऐशेनबाख-निवासी सरदार था। (लगभग १२०० ई०), जिसने राजा आर्थर और प्राल-गाथाओं के फ्रॉसीसी अनुवादों के आधार पर अपनी रचना को प्रस्तुत किया। 'पार्सिवाल' के जर्मन-रूप में दोनों गाथाओं का सामंजस्य स्पष्ट दिखाई देता है। कथानक का सरल और कम दिलचस्प भाग राजा आर्थर की कथाओं से सम्बन्धित है, किन्तु अधिक गम्भीर भाग प्राल-गाथा का महज रूपान्तर है। इस गाथा का कथानक इस प्रकार है :

'ईसामसीह के अन्तिम भोज के बाद, जिम थाल को अरीमेथिया के जोसफ ने अपने अधिकार में रखा, उस थाल का नाम 'प्राल' था। इस थाल में संजीवनी शक्ति थी। अतः इसका मास्त्रिक होना किसी व्यक्ति के लिए बड़े सम्मान की बात समझी जाती थी। काफ़ी समय तक अरीमेथिया के जोसफ को यूरोप में कोई ऐसा व्यक्ति न मिला, जिसे वह इस थाल को सौंप सकता, क्योंकि ऐसे व्यक्ति को पूर्ण दयावन्त होना परमावश्यक था। अन्त में पार्सिवाल के पितामह राजा टिटूरल को यह थाल सौंपा गया। राजा टिटूरल ने इस थाल की प्रतिष्ठा के लिए एक मन्दिर बनवाया और सरदारों के एक विशेष दल को उसकी देख-भाल के लिए नियुक्त किया। वोल्फ्राम ने इस मन्दिर की स्थिति मोंएट साल्वेज नामक दुर्लब्धनीय पहाड़ पर बताई है।'

'बालक पार्सिवाल का पिता उसे अनाथ छोड़ कर स्वर्ग सिंघार गया था, केवल उसकी माँ ने इस डर से कि कहीं उसका बेटा रणकुशल हो कर अन्य सरदारों की भाँति उसे छोड़ कर न चला जाए, पार्सिवाल का पालन-पोषण जन-समुदाय से दूर एक घने जंगल में किया। उसकी माँ हमेशा यही प्रार्थना करती रही कि उसका

बेटा इसी जंगल में अज्ञातवाम करता रहे। इसीलिए उसने पार्सीवाल को पूर्वजों के विषय में कुछ न बताया। उसका बचपन इसी प्रकार बीत गया, लेकिन युवावस्था के आरम्भ में एक दिन जंगल के दूसरे छोर पर उसे तीन सरदार जिन्होंने बातों ही बातों में उसे संभार की सारी गतिविधियों से परिचित करा दिया। अब पार्सीवाल को चैन कहाँ, कुछ दिनों बाद ही वह अपनी माँ को जंगल में अकेला छोड़ कर भाग निकला और राजा आर्थर के दरबार में पहुँचा। तहाँ उससे सब बहुत प्रसन्न हुए। उसने भी कुछ रण-शिक्षा प्राप्त करके अच्छे-अच्छे शूराओं के छक्के लुबा दिए। फिर भी वहाँ उसकी उतनी प्रतिष्ठा न हुई, जितनी उसे आशा थी। अतः वह उस दरबार को छोड़ कर पर्यटन को निकल गया।

एक सौ फूट घूमते-फिरते वह एक निर्जन-घाटी में एक झील के किनारे पहुँचा, जहाँ एक धनवान् किन्तु दुःखी मछुवे ने उसे एक निकटवर्ती किले में ठहरने के लिए जगह बताई। इस किले में पार्सीवाल ने अद्भुत दृश्य देखा। एक विशाल प्रकोष्ठ में वहाँ के राजा के चारों ओर चार सौ सरदार बैठे थे। सुन्दर तरुणियाँ दीप और धूपदान ले कर आई और सिंहासन के आस-पास बैठ गई। अन्त में एक अतीव सुन्दरी अपने हाथों में थाल लिए आई, उसने उस थाल को राजा के सामने रख दिया, राजा उस थाल की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगा। लेकिन वह उसमें रखे पदार्थों को चख नहीं सकता था। उत्सव की विशालता के वाजजूद भी सारा वातावरण दुःखान्त था। पार्सीवाल सब-कुछ आश्चर्यचकित देखता रहा। उसकी समझ में उस उत्सव का अर्थ कुछ न आया। ऐसा प्रतीत होता था कि राजा घायल है। तभी काले कपड़े पहने एक बालक उस भाले को खींच कर लाता दिखाई दिया, जिससे राजा घायल हुआ था; उपस्थित हुआ था। उपस्थित सरदारों ने दुःखी हो कर सिर झुका लिए, तभी पार्सीवाल ने दुबक कर चोरी से देखा कि प्रकोष्ठ के भीतरी भाग में एक हिमश्वेत वृद्ध मरणासन्न अवस्था में बैठा है। घायल राजा, सुन्दरियाँ, दीपदान, गम्भीर सरदार गण, मरणासन्न हिमश्वेत वृद्ध और उत्सव की विशालता से सम्बन्धित दुःखान्त वातावरण—ये सब क्या है? लेकिन जिज्ञासु पार्सीवाल शान्त बैठा रहा। तभी राजा ने पार्सीवाल को बुला कर सिंहासन पर बिठाया। उसके हाथ में

तलवार दी, फिर भी उसने कुछ न पूछा कि यह सब क्या है। इसके बाद वह चुपचाप अपने शयनागार को चला गया। सुबह उठने पर उसने देखा, किले में भीतर बाहर पूरा सन्नाटा छाया हुआ है, सब कोई जाने के लिए तैयार हैं; जैसे, किले को छोड़ देने की पूर्वयोजना थी। वह भी घोड़े पर सवार किले से नीचे उतरता है, तभी एक स्त्री युद्ध में काम आए अपने पति की मृत्यु के लिए उसे दोषी ठहराती है और उससे बुरा-भला कहती है लेकिन फिर वही स्त्री पार्सीवाल को अपना सम्बन्धी बता कर अपने यहाँ ले जाती है और जब उस स्त्री को पता चलता है कि पार्सीवाल का उस प्राल किले में कैसा स्वागत हुआ था तो वह उसकी यह सबसे बड़ी भूल बताती है कि उसने प्रत्येक घटना का भेद क्यों न पूछा। ऐसी भर्त्सना सुन कर पार्सीवाल को आश्चर्य हुआ, लेकिन बिना भेद पूछे वह फिर घोड़े पर सवार होकर चल दिया। इसके काफ़ी समय बाद अन्य कई साहसिक कार्य करता हुआ, वह राजा आर्थर के दरबार में फिर आया। यहाँ उसने कुछ समय तक आराम किया लेकिन एक दिन जब वह दरबार में उपस्थित था, प्राल किले का एक दूत आया और उसने पार्सीवाल पर खुले आम यह दोष लगाया कि उसने अपने कर्तव्य को पूरा नहीं किया है। इस पर वह दरबार छोड़ कर फिर इधर-उधर भटकता रहा, लेकिन उसे ऐसा कोई अवसर न मिला, जहाँ वह उस घायल राजा की वी हुई तलवार का उपयोग कर सकता।

‘इसी बीच में राजा आर्थर के दरबारी सरदार सर गवाइन इत्यादि ‘शातू मर्वाइल’ नामक भवन पर से एक जादूगरनी के प्रभाव को हटाने के प्रयास में तल्लीन थे। तभी पार्सीवाल इस भवन के पास से गुजरता है और युद्धरत जन-समुदाय की चीख पुकार सुन कर भी उनकी महायता नहीं करता। आगे अन्य घटनाओं के बीच उसे अपना पुराना साथी सर गवाइन फिर मिलता है जो एक अज्ञात मार्ग पर प्राल किले की ओर जा रहा था। इन दोनों सरदारों में झगडा हो जाता है, द्वन्द्व होता है और गवाइन घायल हो कर गिर जाता है।

‘लेकिन पार्सीवाल का ऐसा सामरिक युद्धों से दिल नहीं भगता। वह एक लक्ष्यहीन परम मोझा के व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है। तभी एक सौंफ, गुड-फ्राइडे’ के दिन, वह एक साधु के आश्रम पर भटकता

हुआ पहुँचता है। यह साधु प्राल राजाओं के पुरोहिता का वंशज था। वह साधु तब पार्सीवाल को वे मारे भेद बताता है, जिनके लिए वह अब तक जिज्ञासु था, यथा प्राल किले का घायल राजा मॉमरिक सुखों और माया में कैम कर कर्तव्य-च्युत हो गया था, क्योंकि वह तल-वारों की छाया में रति-विलास में व्यस्त रहता था, अतः प्राल नामक थाल का अधिकारी नहीं रह सका। तभी वह किसी वास्तविक योद्धा की प्रतीक्षा में था। बातों के दौरान में उसे यह भी ज्ञात हुआ कि वह घायल राजा उसका चाचा और उस साधु का भाई था, वह अतीव सुन्दरी जो थाल को लाई थी, उसकी मौसी और वह हिमश्वेत वृद्ध उसका पितामह राजा टिस्टान ही है, जो अब भी मरणामन्न अवस्था में पड़ा उसकी प्रतीक्षा करता है। कथानक के शेष भाग में यह दिखाया गया है कि किम प्रकार पार्सीवाल अनेक संकटों का सामना करता हुआ प्राल किले तक पहुँचा। रास्ते में उसका सामना कई प्रतिद्वन्द्वी दलों से हुआ। एक भारतीय सरदार फारेफिज (?) से उसका द्वन्द्व हुआ, जिसे बाद में उसने अपना धर्म-भाई बना लिया (कथानक में यह भ्रातृ-प्रेम का वर्णन सर्वोत्तम है)। तब दोनों सरदार प्राल किले पहुँचते हैं, जहाँ उनका भव्य स्वागत होता है। पार्सीवाल को उस किले का अधिकारी और प्रालवंश का सम्राट् बनाया जाता है। भारतीय सरदार फारेफिज उस थालवाली अतीव सुन्दरी के प्रणयपाश में बँध जाता है, उनका विवाह होता है और वे भारत वापस लौट आते हैं। वहाँ उनके एक पुत्र का जन्म होता है जो 'प्रेमवीटर जोन' के नाम से आगे चल कर मध्य-एशिया के एक विशाल ईसाई राज्य का शासक हुआ। इस प्रकार यह गाथा समाप्त होती है।

'पार्सीवाल' गाथा में प्राल-गाथा कितनी अधिक समाविष्ट है, हम इसके कथानक से जान हैं गए। जहाँ तक 'पार्सीवाल' के साहित्यिक मूल्याङ्कन का प्रश्न है। हम इसे महाकाव्य नहीं मान सकते, अपितु यह गीत-काव्य है, जिसे इसके रचयिता वोल्फराम ने अपने गायक (मिनेसिंगर) रूप में ही प्रस्तुत किया था। इसी काल में (लगभग १२०७-१० ई०) एक समकालीन कवि स्ट्रामबुर्ग-निवासी गोटफ्रीड ने 'टिस्टान' नामक अपरि-

समाप्त महाकाव्य प्रस्तुत किया। यह कवि अपने काल का सर्वोत्तम कवि माना जाता है, क्योंकि उसकी रचना प्रसाद गुण पूर्ण है, माध ही उसने अपने पात्रों का मनोवैज्ञानिक चित्रण इस सूक्ष्मी के साथ किया है कि उनका चरित्र अपने आप कथानक के आवरण से झोंकने लगता है। 'टिस्टान' का कथानक 'पार्सीवाल' की अपेक्षा अधिक सुगठित और असंदिग्ध है। इतना ही नहीं, उसमें अन्य काव्यगत गुणों का अपेक्षाकृत अधिक नियोजन देखने को मिलता है।

'टिस्टान' का कथानक अधूरा होने पर भी शृंगार-रस पूर्ण है, लेकिन इस रचना का नश्य प्रेम को कर्तव्य से अलग करने का नहीं। बल्कि जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलापों को प्रेम के आधार पर कार्यान्वित करना है। फिर भी इस प्रेम की परिभाषा कुछ भिन्न है; यह अहंवादी है। क्रांति में विश्वास रखता है; इसमें बगावत है। वह विवाह और परिवार-संघटन के बंधनों से दूर भागता है; इसमें प्रणय-प्रलाप है, गम्भीरता नहीं है। टिस्टान और इसोल्ड नामक दो पात्र इस प्रणय के शिकार होते हैं, दोनों का देश निकाला होता है, लेकिन अधूरे कथानक में जैसी इनकी रोमांचकारी कथा दी हुई है, वह साहसिक कार्यों से भरी होने पर भी दुःखान्त प्रतीत नहीं होती। फिर भी इसके रचयिता की मृत्यु रचना समाप्त होने से पूर्व हो जाने के कारण यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि उसने क्या अन्त सोचा था। चौमर की कारटेवरी कथाओं की भाँति ही इसका कथानक अधिकांशतः मनोरंजक है। एक अन्य पात्र राजा मार्के की वहमी तबीयत का वर्णन हास्यरस पूर्ण है।

'टिस्टान' के अधूरे कथानक को यहाँ जान बूझ कर नहीं दिया गया है। गोटफ्रीड की मृत्यु के बाद ही, अज्ञात कवियों ने १३ वीं शताब्दी में इस अधूरे कथानक को पूरा करने का प्रयास किया था, किन्तु यह पूरकांश मूल रचना से मेल न खा सका। फिर भी यह गाथा नाटकीय रूप में प्रस्तुत की जाने लगी और मध्य-युग में यह नाटक लोकप्रिय रहा। वर्तमान काल में भी इम्मरमन नामक एक जर्मन नाटककार कवि ने फिर से इस रचना का जीर्णोद्धार किया, किन्तु वह भी इस कार्य को अधूरा छोड़ कर मर गया। यहाँ पर यह बताना

उपयुक्त होगा कि 'ट्रिस्टान' की अपरिसमाप्त मूल रचना में लगभग बीस हजार पंक्तियाँ हैं।

कालोंविजिआ के मठों से सम्बन्धित कथाओं में दो जर्मन वीर गाथाएँ महत्व रखती हैं : एक कोनराड (निधन १२८७ ई.) द्वारा रचित 'रोलाण्ड्प्लीट' और दूसरी कोनराड फ्लीक विरचित 'फ्लोरेउराट ब्लेशोफ्लूर' नामक प्रेम-कथा। ये दोनों रचनाएँ गीति-काव्य हैं। पहली रचना का नायक रोन्सेसवाल का मरदार रोलाण्ड है जो स्पेन के मरदारों से लगातार लड़ता रहा और उन्हें पराजित करता रहा, किन्तु अन्त में अपनी

तमाम शक्तियाँ चुक जाने पर मारा गया। दूसरी रचना राजा कार्ल के कारनामों से भरी पड़ी है। ये दोनों रचनाएँ वीर-रस प्रधान हैं।

इस काल की अन्य विदेशी वीरगाथाओं में 'निधन हैनरी' (उर आर्मे हाइनरिश) नामक एक और रचना प्रसिद्ध है जो ब्रिटेन की कथाओं पर आधारित है। इसका रचयिता हार्टमन फ्रॉन औ है निधन लगभग १२२० ई.) जियकी अन्य रचनाएँ 'इवाइन' और 'एरेक' हैं, जिनमें पहला काव्य उत्तम कोटि का माना जाता है।

५।४।, तमोली पासा,
अलीगढ़ (उ. प्र.)

—प्रेमकिशोर ऐरमादपुरी

तेलुगु कहावतें

जैसा का तैसा—कुक्क काटुकु चेप्पु देब
(कुत्ते के काटने पर जूने से मारना)

चार दिन की चॉदनी—नालुगु रोजुल आटा
(चार दिन का खेल)

जैसा देश वैसा मेष—ए एण्ड का गोडुगु, ए रोटि का पाटा
(जैसा धूप वैसी छतरी जैसा ऊखल वैसा गाना)

थोथा चना बाजै घना—एमि लेनि विस्तरी एगिरेगिरि पडुदित
(खाली पत्तल उछल-उछल पड़ती है)

बराल में छुगी मुँह में राम राम—तेने पूसिन कत्ती
(राहद लगी तलवार)

पब्लिक स्कूल,
बेगमपेट, हैदराबाद द.

—भीमसेन निर्मक

विमाता

एक था राजा । उसकी थी एक रानी । रानी बड़ी सुशील और रूपवती थी । एक दफा की बात है रानी बीमार पड़ गई । राजा ने उसके इलाज में कोई कोर-कसर न रहने दी । फिर भी रानी का स्वास्थ्य गिरता ही गया । बीमारी की हालत में उनके एक राजकुमार का जन्म हो गया । इससे वे और भी दुर्बल हो गईं । दुर्बलता बढ़ती गई और एक दिन उन्होंने राजा को अपने पास बुलाया और कहा : “हे नाथ तुम इस देश के राजा हो । तुम्हारे लिए किसी चीज की कमी नहीं है । तुम चाहोगे तो मेरे बाद दूसरी रानी आ जाएगी । पर मेरी आन्तम प्रार्थना यही है कि तुम उन बच्चों को ठीक से पाल पोस लेना, इन्हें कष्ट न होगा तो मेरी आत्मा को शान्ति मिलेगी ।”

यह सुन कर राजा की आँखों में आँसू आ गए और वे कहने लगे : “हे रानी ऐसी हारी-हारी बातें न करो मैं तुम्हें मरने न दूँगा । तुम्हारे इलाज में कोई कमी न रहने दूँगा । फिर भी, भगवान् न करे, और तुम्हें कुछ हो गया तो मैं दूसरा ब्याह नहीं कहूँगा ।” राजा की बात सुन कर रानी को बड़ा मन्तोष हुआ । वे पल-भर को मुस्कगई । एक बार उन्होंने अपने फूल से बच्चे को देखा, एक बार राजा को, और उसकी आँखें सदा के लिए बन्द हो गईं ।

अब राजा बहुत उदास रहने लगे । न भूख-भर खाते न नींद-भर सोते । राज काज में उनका मन न लगता । ऐसे ही शोक-मन्ताप में एक बरस बीत गया । मन्त्रियों ने बहुतेरा समझाया पर राजा का दुःख कम न हुआ । तब एक दिन उन्होंने सोचा कि रानी अब लौट कर तो आ नहीं सकती, फिर तबीयत गिराए रखने से क्या फायदा ? और अन्त में उन्होंने दूसरी शादी कर ली ।

दूसरी रानी का आना ही था कि राजा पहली रानी को भूल गए । दिन-रात रंगरलियों में मस्त रहने लगे । राज काज छोड़ उन्होंने महल से निकलना भी बन्द कर दिया । नौकरों के भरोसे बच्चे की लापरवाही होने लगी । न उसे ठीक से दूध मिलता न उसकी देख-

रेख होती । धीरे-धीरे वह बहुत दुबला हो गया ।

कहते हैं पहली रानी मर कर वन देवी हुई । सैकड़ों परियों उनकी दासियाँ थीं । इस तरह पूरे साल तक वे सुखपूर्वक वन में रहती रहीं और धीरे-धीरे उनकी वह खुशी उदासी में बदल गई । उन्हें उदाम देख कर फूलों ने स्थलना बन्द कर दिया—पेड़-पौधे मुग्ध-भाने लगे और पशु पक्षी गुम-गुम रहने लगे ।

तब एक दिन परियों ने कहा कि देवी वन में हर ओर पतझड़ और उदासी दिखाई देती है और आप भी हर समय चिन्तित रहती हैं, इसका क्या कारण है ? इन दासियों से जाने-अनजाने कोई भूल हुई हो तो बताइए ।

वनदेवी ने कहा कि हे परियों ! वन के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी मुझे बच्चों के समान प्यारे हैं । गो मुझे उदाम देख कर उनका उदाम होना सर्वथा स्वाभाविक है । मेरी उदासी का कारण जानना चाहती हो तो सुनो : स्त्री को पूर्वजन्म का सब कुछ तो भूल जाता है लेकिन बच्चों की ममता किसी-न-किसी रूप में उसे घेरे रहती है । हे परियों, पूर्व जन्म में मैं मिहल द्वीप के राजा की रानी थी । एक बच्चे को जन्म देने के बाद ही मैंने मनुष्य-योनि छोड़ दी ।

राजा ने मुझे बच्चे को ठीक से पाल पोस कर बड़ा करने का वचन दिया था और मैंने शान्तपूर्वक शरीर त्याग दिया था । हे परियों ! देवी होकर भी अब मेरे स्तनों में दूध बहने लगा है । छाती में रह-रह कर दर्द होता है । मोते-जागते मुझे बच्चे की याद मताती रहती है । मारी रात मेरी आँखों में आँसू भरते रहते हैं, जिन्हें तुम हर रोज सवेरे पत्ती-पत्ती पर बिखरा हुआ देखती हो । मुझे लगता है मेरा बच्चा कष्ट में है ।

यह सुन कर परियाँ शोकाकुल होकर रोने लगीं । देवी ने उन्हें धीरे-धीरे बंधाया और कहा कि तुम में से एक राजा के महल में चली जाओ । मिहल द्वीप के पश्चिम में एक नदी बहती है । नदी के पार तुम्हें एक सुन्दर नगर दिखाई देगा । नगर के चारों ओर चाँदी की बीवारे

है। उम क्षीवार में सोने का एक बड़ा फाटक है, जिनमें भौंति-भौंति क हीरे पन्ने जड़े हुए हैं।

फाटक के अन्दर जाने पर तुम्हें मुँगे और मोतियों की दो सड़कें मिलेंगी—तुम मोतियों वाली सड़क पर जाना। सड़क के दोनों तरफ तुम्हें जमरुंद के पेड़ दिखाई देंगे और उन पेड़ों पर लालों के फूल और मणियों के फल मिलेंगे। सड़क के अन्त में तुम्हें मानसरोवर नाम की एक झील मिलेगी और झील के ठीक बीचों-बीच तुम्हें शीशे का एक महल मिलेगा। महल में हाथी दाँत का फाटक है। फाटक पार करने पर तुम्हें अपने ठीक सामने एक बड़ा-सा आँगन मिलेगा। आँगन के चारों तरफ कमरे हैं, जिनमें चन्दन की एक हजार खड़कियाँ हैं। जिन पर बड़ी सुन्दर पच्चीकारी की गई है।

जिस खड़की पर मोतियों की झालर दिखाई पड़े बस वही रंगमहल है। रंगमहल के जिन कमरे से तुम्हें दूध की गंध आए समझ लेना, मेरा लाल वहीं है।

राजकुमार के पालने में नजरौटा बँधा है और राजकुमार की पहचान यह है कि उसके गले में सूर्य-चन्द्र की कण्ठी है। दाहिनी भुजा पर बघनखा और बाईं पर सुआ सुगरी बँधी है। उसकी दोनों हथेलियों में शंखचक्र और पैरों में पद्म हैं।

परियों ने कहा कि हे देवि! दिन में जाने पर घुरी आँखों का माया पड़ सकता है और रात में जाने पर नगरद्वार बन्द मिलेंगे। इसलिए हे देवि! आप कोई ऐसा उपाय बताइए कि फाटक खुल जाए।

देवी ने कहा कि मैं तुम्हें एक गीत सुनाती हूँ। जिस समय तुम उसे गाओगी तो नदी और सरोवर तुम्हारा रास्ता छोड़ देंगे। इस गीत को जब फाटक और दगवाजे सुनेंगे तो अपने आप खुल जाएँगे। इस गीत के स्वर जब मेरे बच्चे के कानों में पड़ेंगे तो वह भी किल-कारी देगा। यह कह कर देवी ने गाना शुरू किया :

“खोलो खोलो री,
मोरे चन्दन किवरियों!
महल अटारियाँ
छोटे मे लाल रोएँ
दूध बिनीं”

यह सुन कर परिया बहुत खुश हुई। रात होते ही उनमें जो सबसे चतुर थी, रवाना हो गई। उसके-

उड़ते वह सिंहल द्वीप में पहुँची। सिंहल द्वीप के पश्चिम में उसे नदी मिली। नदी देखते ही परी ने देवी का बताया हुआ गीत गाया। बस फिर क्या था, नदी ने रास्ता छोड़ दिया। नदी पार करके परी नगर-द्वार पर पहुँची। बन्द फाटक देख कर उसने फिर वही गीत गाया और फाटक खुल गए। होते होते वह रंगमहल में राजकुमार के पास पहुँची।

राजकुमार मैले कुचैले कपड़े पहने एक गन्दे से पालने में पड़ा हुआ था। बेचारे की नाक बह रही थी—आँखें कीचड़ से चिपाचिपा रहीं थीं। पेट-पीठ एक हो रहे थे। लगता था, उसे भरपेट दूध भी नहीं मिलता और वह महीनों से बीमार है। यह दुर्दशा देख कर परी की आँखों में आँसू आ गए। भोर निकट जान कर वह वापस उड़ चली और वन में पहुँच कर उसने देवी को मारा वृत्तान्त कह सुनाया।

उसे सुन कर देवी और भी बेचैन हो गई और रात को बाट जोहने लगीं। जैसे-तैसे दिन कटा। सूरज ढलते ही देवी स्वयं सिंहल द्वीप गई। बच्चे को देखते ही उन्होंने छाती से लगा लिया। उसे भर पेट दूध पिलाया। नहला धुला कर उसके कपड़े बदले और काजल लगा कर सुला दिया।

इस तरह वे रोज जाकर बच्चे की देखरेख करने लगीं। सारी रात वे उसे गोद में सुलाए रहतीं और भोर होने से पहले ही लौट आतीं। धीरे धीरे इस बारे में घर-घर चर्चा होने लगी। यह बात जब राजा के कानों में पहुँची तो उसने स्वयं जाँच करने का निश्चय किया और वह सौंफ से ही नगर-द्वार के फाटक पर आकर छुप गया।

आधी रात को उसे पहली रानी का गीत सुनाई दिया। गीत समाप्त होते ही फाटक खुल गया और वे सीधी राजमहल की ओर चली गईं। पहले तो राजा बहुत डरा पर फिर वह उन्हीं के पीछे चलने लगा। रंगमहल की खड़की से उसने रानी और बच्चे को देखा।

अब तो राजा को अपने किए पर बहुत पश्चात्ताप होने लगा। लेकिन उसका साहस न हुआ कि रानी के सामने आ जाए और वह रात भर वहीं खड़ा-खड़ा आँसू बहाता रहा। सवेरे जब रानी चलने लगीं तो राजा ने उनके पैर पकड़ लिए।

रानी ने पूछा : कौन हो तुम ?

राजा बोला : “मैं हूँ तुम्हारे बच्चे का हृदयहीन पिता । गनी, मैं अपना वायदा पूरा न कर सका, इससे बहुत लज्जित हूँ । मैंने दू-परी शादी कर ली है । रानी तुम मुझे क्षमा कर दो । तुम कहो तो नई गनी को जीते जी कुत्तों में नुचवा दूँ ।”

देवी बोली : “दोष नई रानी का नहीं । दोष आपका है । अब आप गलती स्वीकार करते हैं तो बच्चे का ध्यान रखिए । इसकी ओर से लापरवाह न होना ।

इपको कष्ट होता है तो मेरे हृदय में पीड़ा होने लगती है ।” इतना कह कर देवी अन्तर्धान हो गई ।

राजा ने बहुतेरा इधर-उधर देखा—बहुतेरी आँखें मली पर पहली रानी उन्हें दिखाई न दी । तब से राजा राजकुमार की स्वयं देख-रेख करने लगा । वन में फिर से पेड़-पौधे हरिया उठे । फल-फूल खिलने लगे और पशु-पक्षी कलरव-गान करने लगे ।

स्वदेशी हाउस,
कानपुर

—तिनक

नारी और पुरुष .

मुँह से ‘नहीं’ निकल जाने पर लाख जतन करने पर भी जो तिनका हिला कर न दे और जब करने की ठान ले तो पल में पहाड़ ढो कर रख दे—डोती चली जाए अविरल गति से जो, उसका नाम नारी है ।

एक तूफान की-सी झोंक में चलता है—नारी का यह सब करना, न-करना । जो इस तूफान में तिनके-सा न बह कर, एकदम अडिगा—अविचलित रहते हुए, उसे ही अपने स्थैर्य से अवसरानुकूल उचित दिशा-परिवर्तन प्रदान करता है, उसका नाम है पुरुष ।

८९२, गली बेरीवाली,
कूचापाती राम, दिल्ली-६

—हरिकृष्णदास गुप्त ‘हरि’

लाल किले का अन्तिम सम्राट्

भारत के राजनैतिक गगन-मण्डल में मुगल साम्राज्य का सूर्य अस्त-प्राय हो चुका था। बाबर की तलवार, हुमायूँ का साहस, अकबर की शासन-व्यवस्था, जहाँगीर का न्याय, शाहजहाँ का ऐश्वर्य तथा औरंगजेब की कूटनीति अन्धकार में विलीन हो चुकी थी। केवल लाल किले के ऊँचे-ऊँचे कंगूरों और मीनारों में उमड़ते हुए सूर्य की क्षीण ज्योति अपनी मन्द-मन्द प्रकाश फैलाए हुए थी। दिल्ली नगर में भी चिराग के तले अन्धेरा वाली कहावत चरितार्थ थी। उस अन्तिम मुगल सम्राट् को लोग उतना ही जानते और मानते थे, जितना उमका तैमूर का वंशज होना तथा लाल किले का स्वामी बन कर रहने का सम्बन्ध था। कभी भूले-भटक कुछ इने-गिने लोग अवश्य अपने स्वार्थवश अथवा अन्य किसी कारण से सलाम बन्दगी और आदाब बजाने पहुँच जाते थे। देश में मात समुन्दर पार करके आने वाले फिरंगियों की कम्पनी-मरकार का शासन था और उन्हीं की कृपा का अभिलाषी पेंशन का भिखारी था, लाल किले का वह अन्तिम मुगल-सम्राट् सिराजुद्दीन मुहम्मद बहादुर शाह 'जफर'।

बहादुरशाह अपनी दीन दशा को भली-भाँति जानता और समझता था परन्तु किर्तव्य विमूढ़ था। हृदय में अपने अधिकारों के हनन का चाहे जितना सन्ताप उमड़े, विवाद के उबार-भाटे आएँ परन्तु वह किसी संघर्ष में पड़ कर अपनी रही-गही प्रतिष्ठा को खोना नहीं चाहता था। वह इतना ही बहुत और सन्तोषपद समझता था कि लाल किले के भीतर अब भी सम्राट् कहा जाता था तथा दीवान-ए-ख़ास में तख्त पर बैठने का उसे सौभाग्य प्राप्त था।

सम्राट् को कुछ राजकाज तो था नहीं। केवल किले के भीतर रह कर कुछ नए और कुछ पुराने नौकरों का सलाम मुजरा लेना अथवा किन्हीं दो-चार शहर के चादुकारों से कुछ इधर-उधर की सुनना और कुछ अपनी कहना ही शेष रह गया था। इसलिए दिल बहलाव का उमने एक दूसरा मशगला ढूँढ़ लिया था और रात-दिन

उममें मस्त रहता था। मशगला था शेर-ओ-सगवुन की चर्चा। उर्दू शायरी के प्रसिद्ध अंग गज़ल-गोई पर अपनी तबीयत का जोर दिखलाना। उस समय उर्दू शायरी का दिल्ली में काफ़ी जोर था। जौक, ग़ालिब जैसे ग़ज़ल के महा-थी मौजूद थे। सम्राट् ने जौक को अपना उस्ताद बना लिया था। दिन रात में दो-चार नवीन तथा जोरदार ग़ज़लें लिख कर उस्तादों से दाद और वाहवाही लेने में ही उनकी तबीयत मस्त रहती थी और वह इसी को बादशाहत समझते थे।

१८५७ ईस्वी, जनवरी का महीना, जाड़ों भरी रात का दूसरा प्रहर आरम्भ हो चुका था। लाल किले के एक सुगंजित कक्ष में मयनद पर आसन जमाए वृद्ध मुगल सम्राट् 'जफर' ग़ज़ल के मिसरे मोड़ कर रहा था। पाम ही दूसरी मयनद पर हिंदुस्तान की मलका जीनत बेगम बैठी थी। कक्ष में पूर्ण स्तब्धता छाई हुई थी। सम्राट् के हाथ में लेखनी थी, पालथी पर कागज़ का एक टुकड़ा रक्खा था। विचारशील दृष्टि उम कागज़ के टुकड़े पर गड़ी थी। बेगम जीनत महल भी शान्त बैठी उनके मुख की ओर देख रही थीं। किन्तु उनके मुख के भावों से ऐसा प्रतीत होता था कि वह किसी दूसरे विचारों में लीन हैं। महमा सम्राट् की लेखनी कागज़ के टुकड़े पर दौड़ गई। उन्होंने कुछ गुनगुनाया फिर उस पर से दृष्टि हटा कर बेगम की ओर देख कर कहा : "मलका ! इतनी देर में सिर्फ़ दो शेर लिख पाया हूँ। लेकिन शेर क्या हैं। जिगर के टुकड़े हैं। जग़ और से सुनना :

"जलाया आप हमने ज्वत करके आहें सोजाँ को,
जिगर को, सीने को, पहलू को, दिल को, जिस्म को, जाँ को
जगह किम-किम को दूँ दिल में, तेरे हाथों में ऐ क़ातिल
कटारी को, छुरी को, बाँक को खंजर को, पैकाँ को।"

शेर समाप्त करके सम्राट् ने गर्व के भाव में कड़ : "बेगम कितने ला जवाब शेर बन पड़े हैं। अफ़सोस है कि उस्ताद जौक क़त्ता कर गए। वरना इन्हें

सुन कर अपनी वेशवहा दाद से मेरे दामन को भर देते ।”

बेगम ने अदब के साथ शाहंशाह की उंगलियों और लेखनी को चूम कर कहा : “शेर तो वाकई हस्बहाल और बड़े जोरदार हैं । दाद से तो मैं भी जहाँ-पनाह का दामन भर सकती हूँ । लेकिन वह तो कोरी दाद और वाद-वाद ही होगी । उससे कोई नतीजा तो नहीं निकल सकता । सिवा इसके कि क्षण-भर के लिए शाहंशाह का मन भर जाए, दिल बहल जाए और उसी जोश में दो चार अशआर और भी लिख डाले जाएँ ।”

“यही तो चाहता हूँ मलका ! हौसला अफ़जाई से ही तो ताक़त मिलती है और ज़रा-सी गौर से ही हीरे जवाहरातों के ढेर लग जाते हैं । दिल बहलाने का यह तो एक मशगला है ।”

“नहीं, जहाँपनाह, यह गजल लिखने और शायरी में डूबे रहने का समय नहीं है ।”

“और किस बात का समय है बेगम ? क्या यह शेरों सख़ुन पर भी मेरी हुकूमत कायम नहीं रहेगी । क्या इस हुकूमत को हिन्दुस्तान की मलका जीनत महल छीनना चाहती हैं ? अगर ऐसा है तो मैं खुद ही नज़र कर सकता हूँ ।”

“शाहंशाह, इस वक़्त तो एक ऐसा ममला सामने है, जिससे सल्तनत मुग़लिया की खोई हुई शानो-शौक़त जहाँपनाह के क़दमों पर आकर लाँटेगी । अफ़सोस है कि इस शायरी की धुन में आपने उस पर गौर ही नहीं किया ।”

“यह क्या ममला है बेगम ? बाक़ई मुझे अभी तक उसकी कोई ख़बर नहीं ।”

“कानपुर बिठूर के पेशवा नाना धुन्धूपन्त का दूत कई दिन से एक पैग़ाम लेकर आया है और हुज़ूर को ख़बर नहीं ।”

“क्या पैग़ाम है ? दूत की ज़बानी सुनने के बदले में हिन्दुस्तान की मलका के मुँह से सुनने में तो वह कुछ और ही वेशवहा बन जाएगा । उसका एक-एक लफ़्ज़ जानदार और दिल में अमर डालने वाला होगा । जल्द कहो बेगम वह क्या पैग़ाम है ?”

“इस वक़्त हिन्दुस्तान में इधर-उधर कुछ कान्ति की चिंगारियाँ सुलग रही हैं और जल्द ही वह सब एक होकर एक हैबतनाक शक़ल बन कर सामने आने वाली हैं । उन चिंगारियों को सुलगाने वाले हमारे हिन्दुस्तानी

ही हैं और उन सबकी आँखें दिल्ली के शाहंशाह पर लगी हुई हैं, जहाँपनाह !”

“मुझे मालूम है मलका ! रोटियाँ और बोटियाँ एक अर्से से हिन्दुस्तान के कोने-कोने में बाँटी जा रही हैं । मगर यह कोई मामूली ममला नहीं है । इस पर गौर करने की ज़रूरत है ?” बादशाह ने गम्भीरता पूर्वक कहा ।

“हिन्दुस्तान के लोगों की आँखें आपका रख ताक़ रही हैं और आप उसे बहुत अहम समझ कर उस पर कोई फैसला ही नहीं दे रहे हैं ।”

“मलका ! फैसला देना ही तो अहमकार है । मैं सोचता हूँ कि किस ताक़त और जवाँ मर्दों पर अपना फैसला दूँ । इन आँखों ने आज तक जो कुछ देखा है, दिल ने जो कुछ बरदाश्त किया है, उन पर गौर करने से तो मेरी गमभ्रम में यही आता है कि इस रही सही इज्जत को खो देना एक बहुत बड़ी हिमात है । हिन्दुस्तान की तलवार में अब धार नहीं है, अगर उसमें धार होती तो क्या मैं इस लाल किले की चौकीदारी करता रहता ।”

“लेकिन जहाँपनाह ! जग़ा मुग़ल खानदान पर भी तो निगाह दौड़ाए । क्या तैमूर के वंशजों का खून गुलाम बन कर रहना और मरना जानता है । आज तक क्या किसी मुग़ल ताजदार को सिर्फ़ इस लाल किले का ही बादशाह बन कर रहना पड़ा है ? मुग़ल बादशाह को जितनी इन फ़िरंगियों ने जलील किया है उतना शायद ही किसी दूसरे हुकमरों ने किसी को किया हो । इसलिए इस मौक़े को हाथ से न जाने देना चाहिए । इन फ़िरंगियों को या तो मुग़ल बादशाह के क़दमों में गिर कर पनाह माँगनी होगी या आज़ादी के लिए मुग़ल खानदान का बच्चा-बच्चा अपनी जान कुर्बान कर देगा ।”

“यही तो गौर करने की बात है, मलका ।”

“तब ठीक है आप गौर फ़रमाइए ! कल मैं नाना के दूत तौनिया टोपे को मुग़ल शाहंशाह का फैसला सुना दूँगी ।” बेगम जीनत महल ने मुस्करा कर कहा ।

“तुम्हारी इस मुस्कराहट का भी तो मैं गुलाम हूँ ।”

× × ×

दूसरे दिन दिल्ली के बीवान-ए-खास में नाना धुन्धूपन्त के दूत तौनिया टोपे को शाहंशाह हिन्दुस्तान,

बहादुरशाह की ओर से बेगम जीनत महल ने पूरी-पूरी स्वीकृति दे दी। दूत वापस लौट गया। उसी दिन से किले का दीवान-ए-खाम भारतीय स्वतन्त्रता-संग्राम का मन्त्रणागृह बन गया। खुले आम फिरंगियों को मार भगाने की चर्चाएँ होने लगीं। योजनाएँ बनने लगीं। इस मन्त्रणा में विशेष रूप से बेगम मलका जीनत महल, शाही हकीम अहमदुल्ला खाँ, शाह-जादा मिर्जा मुगल, मिर्जा खिज़र सुल्तान और मिर्जा अबूबकर शरीफ होते थे। उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बीकानेर, अलवर, जेमलमेर, ग्वालियर और बरेली के खान बहादुर को बदाशह की ओर से पत्र लिख कर गुप्त रूप से भेजे जाने लगे। पत्रों का आशय था कि “मेरी दिल्ली इन्वाज़िशन है कि अफ़रंगी हिन्दुस्तान से निकाल बाहर कर दिए जाएँ। मैं चाहता हूँ कि चाहे ज़िप प्रकार से हो, हिन्दुस्तान स्वतन्त्र हो जाए। मेरी इच्छा भारत पर शासन करने की नहीं है। मैं केवल फिरंगियों को मार भगाने की अभिलाषा रखता हूँ। मैं शासन की बागडोर आप सब के हाथों में देने को तैयार बैठ हूँ। यदि आप सब मिल कर युद्ध करें और शत्रु का भगा दें।”

दीवान-ए-खाम में रोज़ बैठकें होती थीं। नई-नई सूफ़े पेश की जाती थीं। पैराम और संदेश भेजे जाते थे। अपने दिल को शक्तिशाली बनाने के लिए दूसरे लोग भड़काए और उत्तेजित किए जाते थे। किन्तु सम्राट् बहादुर शाह अब भी सोच-विचार में थे। वह इस समय तक यही प्रयत्न कर रहे थे कि मैं इस झमेले से बचा रहूँ और मेरी मौजूदा मर्यादा में कोई बढ़ा न लगे।

× × ×

उस समय अंग्रेज़ों की शासन-व्यवस्था बहुत पिछड़ी हुई थी। दूर के स्थानों में क्या हो रहा है — यह जानना तो कठिन था ही। ज़िम मुख्य स्थान पर कम्पनी का प्रतिनिधि बैठा रहता था, उसे वहाँ के किसी भी गुप्त पड़्यन्त्र का कोई पता नहीं चलता था। साथ ही वे लोग जानने का प्रयत्न भी नहीं करते थे। इसका कारण यही था कि उन्हें दृढ़ विश्वास था कि हमारा आतंक देश में ऐसा छाया हुआ है कि किसी भी छोटे-बड़े को किसी प्रकार से सिर उठाने का माहम नहीं। किसी देश-व्यापी क्रांति के होने की तो उन्हें स्वप्न में भी सम्भावना न थी। इसीलिए शासक निश्चिन्त हो

पैर फ़ैला कर सोते थे और जागृत अवस्था में नाच रंग और मनबहलाव में मस्त रहते थे। वे समझते थे कि हम एक ऐसे गुलाम देश पर शासन कर रहे हैं, जहाँ का मानव समाज गुलामी में ओतप्रोत है। उसके कोई स्वतन्त्र विचार नहीं, कोई अभिलाषाएँ नहीं। सैकड़ों वर्षों में गुलाम कहलाने वालों का आत्म-विश्वास, आत्म-गौरव और स्वतन्त्रता की भावनाएँ क्या कभी जीवित रह सकती हैं। वे सब मर चुकी हैं। उनमें कोई दम नहीं है।

इस देश में गुप्त रूप में जहाँ तहाँ क्रांति की चिंगारियाँ सुलग रही थीं। इसका मुख्य केन्द्र था कानपुर का बिठूर। पेशवा नाना धुन्धू पन्त उसके मुख्य थे। देश व्यापी महाक्रान्त को सफल बनाने के लिए अनेकों प्रकार की योजनाएँ बनाई गई थीं। राजाओं और महागजाओं के पादुकों द्वारा चुपचाप मन्देश भेजे जा रहे थे। जनता और पैनिकों की छानियों में, माधुओं, पण्डितों द्वारा, नाचने गाने वाली वैश्याओं द्वारा, तमाशा दखने वाले नटों और बाजीगरों द्वारा मन्देश पहुँचा कर लोगों को मचेत और आगंतृत किया जा रहा था। इसके अतिरिक्त रोटियाँ और माँप की बोटीयाँ गाँव-गाँव और नगरों में पहुँचा कर तथा लोगों में वितरण कर विशेष रूप से चेतावनी दी जा रही थी। दिल्ली में भी रोटियाँ और बोटीयाँ पहुँची थीं और सफलता पूर्वक वितरित हो चुकी थीं।

१८५७ की फ़रवरी मास के अन्त में दिल्ली में बैठी कम्पनी-सरकार के प्रतिनिधि के कानों में इन रोटियों के वितरण की चर्चा सुनाई दी। उसके कुछ भी समझ में न आया कि इसमें क्या रहस्य छिपा है अथवा इसका राजनीति से क्या सम्बन्ध हो सकता है। फिर भी उसने एक माधारण तरीके से इसका भेद जानने के लिए दिल्ली के उराइन्ट मजिस्ट्रेट थ्यफ़ेलिम मेटकाफ़ को सूचना भेज दी। मेटकाफ़ ने पुलिस इन्स्पेक्टर मुइनुद्दीन हुसैन खाँ को अपने निवास-स्थान पर बुला कर कहा : “सुना है दिल्ली में रोटियाँ और बोटीयाँ बाँटी जा रही हैं। इनका वास्तविक भेद क्या हो सकता है? क्या इनके वितरण का राजनीति से कुछ सम्बन्ध है।”

मुइनुद्दीन ने उत्तर में विनय की : “यों तो लोग बहुधा जुमा जुमरात को गरीबों और फ़कीरों को चपातियाँ और गोश्त खिलाया या बाँटा करते हैं परन्तु

न रोटियों बोटियों के वितरण का क्या कारण हो सकता है, ठीक-ठीक नहीं कहा सकता। मैंने अपने आख्यकाल में अपने पिता के मुख से यह अवश्य सुना था कि मरहटों के पतनकाल में मक्ई के पौड़े की टक्नी और राटी का टुकड़ा गाँव-गाँव में वितरित किए गए थे। हो सकता है कि इनमें भी किसी प्रकार की क्रान्ति की प्रथम सूचना हो।”

“कौन सिर उठा सकता है। सब मुर्दा है।” मेरठ-काफ़ ने मुस्करा कर कहा।

उसके पश्चात् मुडनुद्दीन मलाम करके चला गया। और मेरठ-काफ़ बोतल से मदिरा उँडेल कर पीने लगा।

× × ×

१० मई १८५७ की रात को मेरठ छावनी में एक भारतीय सवार दिल्ली में मिस्टर फ्रेजर के बंगले का पता पूछता हुआ तेजी से बढ़ा चला जा रहा था। बंगले पर पहुँच कर उसने जमादार से साहब के हाथ में एक पत्र देने का आग्रह किया।

मिस्टर फ्रेजर खाना खाने के पश्चात् नशे में मस्त आराम कुर्सी पर बैठे झपकी ले रहे थे। यद्यपि जमादार उनका स्वभाव से परिचित था कि वह खाना खाने के पश्चात् न किसी से मिलते, न किसी से बात करते और न किसी को अपने पास आने देते हैं। फिर भी सवार के अत्यन्त आवश्यक पत्र बतलाने पर उसने साहब को जगा दिया। फ्रेजर ने जागते ही जमादार को बहुत बुग-भला कहा और मेरठ से आए पत्र को बिना खोले और पढ़े मेज़ पर फेंक कर फिर मीठी झपकियाँ लेने लगे। जमादार और सवार अपने-अपने ठिकाने चले गए।

रात व्यतीत होते ही ११ मई को प्रातः आठ नौ बजे दिल्ली नगर में सहसा हलचल मच गई। तूफ़ान सा आ गया। मेरठ की ओर से क्रान्तिकारी सेना शहर में घुम आई। सैनिकों ने नगर में प्रवेश करते ही लूट-पाट और मार-काट का भयानक दृश्य उपस्थित हो गया। अंग्रेज़, ईपाई और अंग्रेज़ों के भक्त तथा कृपा-पात्र भारतीय पदाधिकारी ढूँढ़-ढूँढ़ कर, घरों के भीतर घुम कर तलवार, बन्दूक और संगीनों के घाट उतारे जाने लगे। शीघ्र ही दिल्ली स्थित कम्पनी सरकार की भारतीय सेना अपने अंग्रेज़ अफ़सरों को परिवार ठगड़ा करक़ क्रान्तिकारियों में सम्मिश्रित हो गई। स्थिति बिगड़

गई। दिल्ली में उपस्थित अंग्रेज़-समाज किर्कपट्टी विमूढ़-मा हो गया। हाथ पैर फूल गए। आँखों के सामने अंधेरा छा गया। धीरे-धीरे छूट गया और अन्त में प्राणों का मोह लेकर जिधर जिधे सौम दिखाई पड़ी, भागने लगा परन्तु मृत्यु वहाँ भी पीछा नहीं छोड़ रही थी। बहुत-से अंग्रेज़ स्त्रियाँ और बच्चे लाल किले की ओर भी भागते दिखाई पड़े।

नगर के अंग्रेज़ों का खून बहा कर तथा वहाँ क्रान्तिमय वातावरण उत्पन्न करके क्रान्तिकारी सेनाएँ किले में दाखिल हो गईं। किले के स्वतन्त्रता प्रेमी शाहजादों ने उनका स्वागत किया। परन्तु शाहशाह अब भी चुप और तटस्थ थे। क्रान्तिकारी सेनाओं के प्रतिनिधि अपनी सेवाएँ समर्पित करने के लिए बादशाह के दरबार में हाज़िर हुए तो बादशाह ने उन्हें आदेश दिया कि उस विषय में शाही हकीम अहमसानुल्ला ख़ाँ से मिलो मुझ से मिलने की विशेष ज़रूरत नहीं।

बादशाह बहादुर शाह बड़े अममञ्जम में थे। उनकी गमक में नहीं आ रहा था कि वह क्या करें। अपनी पेंशन और बची-खुची मर्यादा की रक्षा किस प्रकार करें। अभी तक तो किले के भीतर शाहजादों और अन्य कुछ लोगों तक ही यह आग दबी दबाई सुलग रही थी, अब विद्रोही सेनाओं के किले में आकर जम जाने से खुले आम इगला शोर-शरा मुनाई पड़ने लगा। उन्हें यह भी मालूम हो चुका था कि दिल्ली नगर में अंग्रेज़ों और उनके सहायकों का विनाश भी सैनिकों द्वारा हो चुका है और कुछ अंग्रेज़ों ने आ कर किले में शरण ली है। यद्यपि उन शरणार्थियों की सुरक्षा का उन्होंने यथाशक्ति प्रबन्ध कर दिया था। फिर भी उनका हृदय शंका से भरा हुआ था।

क्रान्तिकारी हकीम अहमसानुल्ला ख़ाँ मिले। हकीम ने सेनाओं की एक सूची तैयार की और बरेली की क्रान्तिकारी सेनाओं के सेनापति बख्त ख़ाँ को सेनापति घोषित किया गया। अब क्या था? बादशाह विद्रोहियों के हाथ का कठपुतली बन गया। चाहे वह चुप रहे या बोलें, तटस्थ रहे अथवा विद्रोह में भाग लें। उसका कोई अर्थ न था। सब काम हकीम और शाहजादों की सलाह से होता था। किन्तु मुहर बादशाह की लगती थी और मुगल सम्राट् की दुहाई दी जाती थी।

धीरे-धीरे किले के भीतर की स्थिति और बिगड़

गई। शरणार्थी अंग्रेजों का एक दिन वध कर डाला गया। सम्राट् ने सुना और किर्तव्य विमूढ़ रह गया।

X X X

१४ सितम्बर, १८५७ को पौमा पलट गया।

जनरल विल्यम और मेजर हडसन ने दिल्ली में घेरा डाल दिया। क्रान्तिकारियों ने मोर्चे लिए, परन्तु सब बेकार रहा। दिल्ली का पतन हो गया। सम्राट् बहादुरशाह और तीन शाहजादों को भाग कर हुमायूँ के मक़बरे में छिपना पड़ा। यद्यपि सेनापति बख़्तख़ाँ सम्राट् को अपने साथ भगा कर ले जाना चाहता था। परन्तु मिर्जा इलाही बख़्श ने न जाने दिया और आत्म-समर्पण के लिए बाध्य किया।

२० सितम्बर का दिन दिल्ली के लिए रक्त-वर्षा का दिन था। त्रिम समय फिरंगी सेना ने नगर में प्रवेश किया, चारों ओर हाहाकार मच गया। जो भी नगर निवासी शहर पनाह की सीवार के भीतर चलता फिरता पाया गया, शीघ्र संगीनों से छेदकर मार डाला गया। जगह-जगह लाशों के पहाड़ खड़े हो गए। इसके अतिरिक्त घरों के भीतर से निर्दोषी जनता निकाल-निकाल कर वध की गई। खून की नदियाँ बह निकलीं।

दिल्ली के उम भवन में जिसमें कभी बेगम समरू रहती थी, एक मामूली साधारण-सी बान बिनी हुई चारपाई पर पाँव पर पाँव रखे एक वयोवृद्ध ७० वर्ष का बूढ़ा बैठा था। मुख पर लम्बी सफ़ेद दाढ़ी के अतिरिक्त और कोई तेज अथवा चमकान थी। वह सफ़ेद चोगा और सफ़ेद वस्त्र की पगड़ी पहने था। उसके पीछे खड़े हुए दो सेवक बादशाहत के चिन्ह-स्वरूप मयूर परंखों की चैवर हिला रहे थे। उसकी निगाह पृथ्वी में गड़ी हुई थी। मानों वह अपनी वर्तमान अवस्था को पृथ्वी में दबा देने का प्रयत्न करना चाहता था। उसमें तीन फुट की दूरी पर एक दूसरी चारपाई पर एक अंग्रेज अफसर बैठा था और उसके दोनों ओर दो अंग्रेज सैनिक किर्चे चढ़ी हुई बन्दूकें लिए खड़े थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उम वयोवृद्ध कैदी के तानिक भी अनधिकार चेष्टा करने पर दोनों अंग्रेज पहरेदार तुरन्त ही अपने हाथों से उसकी धज्जियाँ उड़ा देने को प्रस्तुत हैं।

यह था मुगल साम्राज्य का अन्तिम प्रतिनिधि बहादुरशाह ज़फ़र। २१ सितम्बर की संध्या को मेजर हडसन ने इस प्रधान व्यक्ति को दिल्ली क्रान्ति का सबसे

बड़ा नेता सम्भर कर तथा दिल्ली नगर से भाग निकलने की चेष्टा की सम्भावना से हुमायूँ के मक़बरे में गिरफ़्तार किया था और इम भवन में बन्दी के रूप में रखा था।

अभी एक प्रहर दिन चढ़ा होगा कि भवन का प्रधान द्वार खुला। मेजर हडसन चार गोरे सैनिक तथा तीन अन्य गोरे, जिनके हाथों में कपड़े से ढके हुए तीन थाल थे, बहादुरशाह के सामने आकर खड़े हुए।

सम्राट् ने ऊपर को दृष्टि उठाई हडसन ने झुककर सलाम करते हुए किंचित मुस्कराकर कहा “हिन्दी सम्राट्, असें से आपकी नज़र बन्दी कर दी गई। आपने इम क्रान्ति में भाग लिया अस्तु आपकी वह नज़र फिर जारी की जाती है और सब से पहले मैं ही अपनी नज़र पेश करता हूँ।” इतना कहकर मेजर हडसन ने तीनों थालों के ऊपर से वस्त्र हटाकर सम्राट् के सामने रख दिया।

इन थालों में शाहजादा मिर्जा मुग़ल, मिर्जा ख़िज़र और सुलतान और मिर्जा अबूबकर के मिर थे। मुंशौ रज़्जब अली और मिर्जा इलाही बख़्श द्वारा हडसन को पता चला था कि बहादुरशाह के दो बेटे और एक पोता हुमायूँ के मक़बरे में छिपे हुए हैं। उसने शीघ्र ही वहाँ पहुँच कर छलबल में उन्हें बन्दी बनाया और दिल्ली के करीब लाकर उन्हें गोलियों का शिकार बना दिया। शिर सम्राट् को भेंट करने लाया।

बहादुरशाह ने अपने बेटों और पोते के कटे सिर को हैरत और सन्न भरी दृष्टि से देख कर एक ओर मुँह फेरते हुए कहा—“तैमूर की औलाद ऐसी ही सुख्खें होकर बाप के मासने आया करती थी।”

इसके पश्चात् दिल्ली के अनेकों मुहल्लों में भीषण मारकाट हुई। गुनहगार, और बेगुनाह, किसी पर ध्यान नहीं दिया गया। हज़ारों आदमी एक साथ खड़े करके गोलियों के शिकार बनाए गए। दिल्ली में जगह-जगह कोई भी भारी वृद्ध ऐसा नहीं दिखाई पड़ता था जिस पर सौ-पचास आदमी फौसी पर लटके हुए न दिखाई पड़ते हों।

२७ जनवरी १८५८ की प्रातः को लाल किले के दीवाने ख़ास में लेफ़्टिनेन्ट कर्नल डास की अध्यक्षता में एक कमीशन बैठा हुआ था। सामने अभियुक्त के रूप में दिल्ली का भूतपूर्व सम्राट् बहादुरशाह खड़ा था।

अभियोगी पर दिल्ली कान्ति के सम्बन्ध में तीन अभियोग लगाए गए थे, जिनको पढ़ कर कर्नल डास ने सुनाया :

“तुमने, कम्पनी-सरकार के पेंशन भोगी होते हुए अपने कर्तव्य और स्वामी-भक्ति को भुलाकर बरेली के सूबेदार बख्तख़ाँ तथा अन्य देशी अफसरों और सिपाहियों को कम्पनी-सरकार के विरुद्ध कान्ति तथा विप्लव करने के लिए भड़काया और उत्तेजित किया।

—तुमने अपने पुत्र मिर्जा मुगल तथा अन्य लोगों को कम्पनी सरकार के विरोध में तलवार उठाने के लिए उत्साहित किया और सहायता दी।

—तुमने अपने को हिन्दुस्तान का सम्राट् घोषित कर दिल्ली नगर पर अपना अनुचित अधिकार स्थापित करके कम्पनी-सरकार का शासन उलट देना चाहा और उसके लिए महाकान्ति का भण्डा खड़ा किया। साथ ही शासन के विरुद्ध युद्ध करने की चेष्टा की।

—तुमने किले में शरण लेने वाले ४६ अंग्रेज, स्त्री, बच्चों का अपने आँखों के सामने वध कराया और हत्याकारियों को पुरस्कृत किया। इसके अतिरिक्त विभिन्न देशी राज्यों के नाम आज्ञा-पत्र जारी किए और उन्हें विप्लव के लिए आमंत्रित किया।”

कर्नल डास ने अपराधों को सुना कर सम्राट् अभियुक्त से कहा : “तुम उपरोक्त अपराधों को स्वीकार करते हो या नहीं ?”

“मे किसी भी अपराध का भागी नहीं हूँ।” अभियुक्त बहादुरशाह ने दृढ़ता के साथ कहा।

बहादुरशाह के अपराध स्वीकार न करने पर

कमीशन के सम्मुख कई दिनों तक गवाह और प्रमाण आदि पेश होते रहे। इसके पश्चात् अभियुक्त को एक कान्तिकारी, हत्यारा और विप्लवी सिद्ध किया गया और उससे अपने को निर्दोष प्रमाणित करने के लिए कहा गया।

बहादुरशाह ने अपना लम्बा-चौड़ा लिखित बयान पेश किया और पूर्ण रूप से अपने को निर्दोष, शासन-भक्त तथा अग्रगण्य सिद्ध किया। बयान अक्षरशः सत्य होने पर भी कमीशन ने उसे ठुकरा दिया और उसे पूर्ण रूप से विद्रोही ठहरा कर उस वयोवृद्ध मुगल बादशाह को अन्तिम फ़ैमला सुना दिया। उसे प्राणदण्ड की मजा न दी जाकर आजीवन काले पानी की मजा दी गई। सम्राट् ने धैर्य के साथ कमीशन के फ़ैमले को सुना और उसी समय दो शेर पड़े :

“देख मुझको बुते बेपीर ने मुँह फेर लिया

आज मुझसे मेरी तकदीर ने मुँह फेर लिया

अक़ल ने, होश ने, तदबीर ने मुँह फेर लिया

बस मेरी आह में, तासीर ने मुँह फेर लिया”

× × ×

एक दिन माधारण कैदी की भाँति मुगल-वंश का वह अन्तिम सम्राट् लाल किले के उस जगमगाने दीवान-ए-खास में बेगम जीनत महल दूसरी बेगम जवाँ बख्त और एक रसूल वैश्या के पुत्र शाह अब्बाम प्रभृति के साथ, रंगून में तीस मील दूर सिलॉंग नदी के तट पर तुंगतोंग नामक स्थान के बन्दी-गृह में बन्द रहने के लिए जाता हुआ दिखाई पड़ा।

अरुण कुटीर, मिल्बरी लाइन्स,
रीवाँ (मध्य-प्रदेश)

—हरिकृष्ण देवसरे

साहित्य के अध्ययन का उद्देश्य

“साहित्य के अध्ययन का मुख्य उद्देश्य केवल उसकी आलोचना करना ही नहीं है। जब तक उसकी अनुभूति और कल्पना हम तक नहीं पहुँचती, हमारी अपनी नहीं बन जाती तब तक हम उसका सही अध्ययन नहीं कर सकते। आलोचना से अधिक महत्वपूर्ण और अधिक गम्भीर वस्तु है साहित्य अथवा किसी भी महान् वस्तु से साक्षात्कार।”

—सर रिचर्ड लिविंगस्टन

मैं डाकू कैसे बन गया था ?

सतार हमेन अपने पायजामे को ऊपर चढ़ा कर पाँव मेज पर रखते हुए कोधावेश में बोल उठे : “नीलू की फ्राउगटेन पेन किमने ली है ? ईमानदारी से मुझे सौंप दो, जर्ना एक-एक की खाल खींच लूँगा। सब लोग, अपने-अपने भोले देख डालो।”

सब लड़के मञ्जरुह गये। एक-दूसरे का मुँह देखते हुए सभी अपने-अपने भोले देखने लगे। अगर किसी ने अपना भोला नहीं देखा, तो सतार मियों के चचाजात भाई हार्फ्रिज ने। मे समझता था, वह मौलवी साहब का भाई है, उसने तो चुराई नहीं होगी। पर मैं मौलवी साहब का कहना मान कर अपना भोला देखने लगा। अन्यमनस्क-सा एक-एक किताब उलट ही रहा था कि नीलू की नीली फ्राउगटेन पेन मेरे हाथ लगी। मैं सुन्न हो गया। हार्फ्रिज मेरी ओर ही देख रहा था। उसकी ओर मेरी आँखें चार हुई और मेरे कदने के पूर्व ही वह बोल उठा : “मास्टर जी, मास्टर जी, लालता के भोले में से कलम निकली है !”

मैं बोल उठा : “नहीं साहब, मेने नहीं चुगाई थी। पता नहीं किमने मेरे भोले में डाल दी थी।”

और मौलवी साहब ने न आग्रह देखा न ताव, सड़ासड़-मड़ासड़ एक पचीस वेंत जमा दिए मुझे। मैं जो निगाहें काँती रहा था, हाथ जोड़ ही गा रहा था, पर मेरे माथ कक्षा के सभी विद्यार्थी यहाँ तक कि हार्फ्रिज भी रोने और प्रार्थना करने लगे : “छोड़ दीजिए, मौलवी साहब, छोड़ दीजिए ! लालता चोर नहीं है, भूल से किसी ने रख दी होगी उसके भोल में।” लेकिन मौलवी साहब अपनी शान में थे।

फिर एक दिन जब मैं पुलिस की आँख की किम-किरी बना, उसमें ऐसी ही बहुत-सी घटनाओं का हाथ था। उसका कौन जिम्मेदार है, मैं नहीं समझ पाया। किन्तु इतना अवश्य देख रहा हूँ कि केवल मैं ही नहीं, मेरे जैसे कितने ही निरपराध बेकुसूर सीधे-मादे, भोले-भाले लोग हार्फ्रिज जैसे चोर, दगाबाज और बेईमान इन्सान के चक्कर में पड़ कर जीवन बरबाद कर बैठते हैं।

उपरोक्त घटना तब की है जब मैं पाँचवी कक्षा का

विद्यार्थी था। अब उस समय का क्रिस्ता मुनिए, जब मैं सातवीं में था। स्कूल के पास ही एक फलवाले की दुकान थी। उसकी मुझसे खूब पटती थी। वह मुझे कभी-कभी उधार भी दे दिया करता था मैं। महीने-दूसरे महीने उसका हिमाच चुकता कर देता। भाग्य या दुर्भाग्य से मेरे पिता जी का उस नगर से तबादला हो गया। अतः मुझे भी वह स्कूल छोड़ देना पड़ा। साल-डेढ़ साल के बाद जब मैं पुनः उस नगरी में पहुँचा और संयोग से उस फलवाले के यहाँ गया, तो उसने नमस्कार करने के बाद कहा : “बाबू, हिमाच बहुत हो गया है। कब चुकता करेंगे ?”

मैंने तुरन्त पृच्छा : “कौन-सा हिमाच ?”

“साल-भर में बाबू उधारे ही फल मँगाते हैं और कहते हैं कौन-सा हिमाच ?”

“साल-भर से ?”

“अरे हाँ साहब हाँ, साल-भर से; बल्कि साल भर से भी ऊपर हो गया।”

“ओह, तो यह बात है। लेकिन तुम हिमाच लेने से पहले यह जान लो कि मैं डेढ़ वर्ष में उलाहाबाद में पढ़ता हूँ, बनारस में नहीं।”

“बनारस में नहीं पढ़ते। क्या कहते हैं, साहब ? क्वान्त कालेज का एक छात्र का आने का नाम तो यहाँ रोख ही फल ले जाया करता है, नो क्या यह भ्रूट है।”

“और नहीं तो क्या गच है ?”

“वाह खूब रही।”

“खूब तो रही ही, तुम उस लड़के से पकड़ कर लो ?”

और जब चौथे दिन गया, तो देखा, वहाँ न फलवाला है, न फलवाले की दुकान। राख का ढेर पड़ा है, इधर-उधर ईंटों के टुकड़े और कंकड़ बिखरे हुए हैं। आस-पास पूछने पर मालूम हुआ कि फलवाले की दुकान दो दिन पहले ही शाम को लूट ली गई। लूटने के बाद दुकान में आग लगा दिया स्कूली लड़कों ने, और उसे मारा भी। और ऐसा मारा कि अस्पताल में आज सवेरे उसकी मृत्यु हो गई। न कोई पकड़ा गया, न कुछ हुआ ही। उसकी गरीब बेवा माँ यहाँ आ कर तड़प रही थी।

मैं अवाक रह गया। इन्मानियत के नाम पर यह अत्याचार। सोचने लगा, मैं कलंकित हूँ। मेरे लिए यह जोखिम ठाढ़ा उस फलवाले ने। मैंने उसकी बूढ़ी माँ का पता लगाया, पर वह नहीं मिली।

जीवन-यात्रा में प्रवेश करते ही मुझे चारों ओर से निराशाओं का सामना करना पड़ा। किसी भी अच्छे काम में रोड़े अटकाने वाले ही ज़्यादा मिले। गड़टे में धकेल कर तमाशा देखने वालों की संख्या भी कम नहीं। इन सब का सकाबला मैंने डट कर किया। तमाशा

बला मैंने डट कर किया। पर अकारण फैसाए जाते रहने और कहीं सुनवाई न होने से मुझे टेम-पर-टेम लगती गई। एक दिन मेरे पास में एक धनिक के यहाँ दिन-दहाड़े चोरी हुई। चोरों और मकानवालों से डट कर लड़ाई हुई। दोनों दलों के लोगों को चोटें लगीं और काफ़ी चोटें लगीं। लेकिन चोर आखिर चोर ही ठहरे। पकड़े नहीं गए। मुकद्दमा खड़ा किया गया। धर-पकड़ शुरू हुई। धर-पकड़ में अच्छे शरीर वालों की संख्या ही अधिक थी। तो भला मैं कैसे हटता। बिना वारण्ट पकड़ लिया गया।

उतनी बात में और बता देना चाहता हूँ कि पकड़े जाने वालों में मैं किसी को चोट का नामोनिशान भी नहीं था। मालूम होता था कि रातों रात ही सभी तथाकथित चोरों ने अपनी-अपनी चोटें अच्छी कर ली थीं। उनके पास ज़हर कोई ऐसी औषधि है, जिससे चोटें २४ घण्टों में अच्छी कर ली जाती हैं। नहीं तो मकान वाले महीनों अस्पताल में पड़े छुट की कड़ियाँ गिरते रहे और चोर जेल में बन्दी बनाए जाते ही काम में लगा दिए गए।

हम लोग सन्देह में पकड़े गए थे। मुकद्दमे की सुनवाई होती तो हम आपस में दुनियादारी की बातें करते। कुछ गम न था। लेकिन भाइयो, जब हम पर एक-एक पर इसलिए वेभाव मार पड़ी कि चोरों के अथवा अपने माथियों का नाम क्यों नहीं बताते, तो यही लगता था कि उस दुनिया में दया और धरम तो कहीं है ही नहीं। मार सहते गए। हम में से किसी ने भी चोरों के बारे में कुछ नहीं बताया। और बताता तो कैसे? किसी को कुछ मालूम ही नहीं था। दो-एक ने भय से मुखबिरी करने

की ज़रूर चेष्टा की, लेकिन सफल नहीं हुए। आखिरकार हम सब ने अत्याचारी जेलर से बदला लेने की ठानी। अपनी-अपनी बेड़ियाँ तोड़ीं। दीवाल फाँदने की योजना बनी और तैयार हो गई। अकस्मात् जेलर महोदय शाम होते-न-होते आ ही गए। उनका आना हमारी क्रोधाग्नि में घी का काम कर गया। परिणाम यह हुआ कि उनके मावधान होने से पूर्व, सीटी बजाने से पहले, हम सब ने उनके मुँह में कपड़े ठूँस कर कोठरी में धूमों से ही मार डाला। फिर क्या था। जेलर के मारे जाने की खबर

एक-एक करके निकल भागे और मुसंगठित हो उसी कार्य में लग गए, जिनके न करने पर दंडित हुए थे।

यह कम बरसों तक चलता रहा। घर वालों को किसी गिरतेदार के हाथ कुछ रूपए महीने भिजवा दिए जाते और लुक-छिप कर घुमकड़ी जीवन जीतता रहा। दुनिया वालों और पुलिसवालों की लाख चेष्टाओं के बावजूद भी हमारा बाल भी बाँका नहीं हो सका। जब हम नेक थे, तो दुनियावालों ने हमारी नाक में दम कर रखा था। हमें हर तरह परेशान किया और जब हमें दुनियादारी आई, तो उसका जी भर कर बदला लिया।

मैं अभीर नहीं था, यह सही है। पर दमिर् भी नहीं था कि इज्जत बेचता। लेकिन इमान और इज्जत बेचने वाले असंख्य धनिकों से मुझे सफ़त नफ़रत हो गई। मैं सुक्ताना होने का दावा नहीं रखता था किन्तु अभीरों के भरे खजाने में से कुछ निकाल कर यदि गरीबों को देने का काम ही करता रहा था तो लोग मुझे डाकू क्यों कहने लगे—दानी क्यों नहीं कहे? हराम की कमाई याद देवानों में लेकर देवताओं के जीते-जागते पुतलों में बाँट ही दी जाय, तो कौन-सा गुनाह है? खैर।

मैंने अब डाका डालने का काम छोड़ दिया है, क्योंकि यह धन्या अच्छा नहीं है और मुझ में इतनी शक्ति भी नहीं है कि एक दल संगठित कर सकूँ। लेकिन पुलिस अभी भी मेरा पीछा इसलिए नहीं छोड़ती है, क्योंकि वह समझती है कि मैं बहुत खतरनाक आदमी हूँ। पर मैं केना हूँ यह कोई हाफिज से पूछ ले। फलवाला नहीं है, तो वह भी कुछ-न-कुछ जवाब देता।

• •

• •

• •

in central Government he permitted to be done in english ? obviously not" अर्थात् क्या केन्द्रीय सभा की कारवाही और राज्य के बड़े पदाधिकारियों तथा केन्द्रीय सरकार के अन्य कर्मचारियों के प्रबन्ध-कार्य, अंग्रेजी में होने के लिए अनुज्ञापित हो सकेंगे ? हाँगिज नहीं। हिन्दी के विषय में उनका विचार इस प्रकार था : "Hindi is bound to be the language of the Central Government and also of the provincial Governments in thier dealings with each other and with the Government of India." अर्थात् हिन्दी, केन्द्रीय सरकार एवं विधान-सभा की तथा प्रान्तीय सरकारों के पारस्परिक और भारत सरकार के साथ व्यवहार की भाषा होने के लिए निश्चित है।

वे दक्षिण भारत के बालकों को उपदेश देते हुए आगे कहते हैं : The present generation of boys should therefore immediately take up Hindi whether it be introduced in the school curriculum or not. Otherwise they would practically lose a valuable part of the rights of Indian citizenship." अर्थात्—अतएव वर्तमान पीढ़ी के बच्चों को तत्काल हिन्दी को प्रहण कर लेना चाहिए, चाहे वह विद्यालय के पाठ्यक्रम में रखी जाए या न रखी जाए; अन्यथा वे भारतीय नागरिकता के अधिकार के एक बहुमूल्य अंश को व्यवहारतः खो देंगे।

राजनीतिक कारणों के अतिरिक्त सांस्कृतिक एवं जीविका सम्बन्धी आवश्यकताओं में भी हिन्दी सीखना अनिवार्य बताते हुए उन्होंने यहाँ तक कह दिया है कि : "The south will be a dead branch of the tree, if it is not in living daily contact with the larger India and here too we can not rest on the English medium." अर्थात् याद दिलाएँ, भारतवर्ष के एक बड़े भाग के दैनिक व्यवहार के सम्पर्क में नहीं रहेगा तो वह पेड़ की एक सूखी डाल के समान हो जाएगा और हम लोग इसके लिए अंग्रेजी माध्यम पर निर्भर नहीं रह सकते।

भला बताइए, इससे अधिक क्या कहा जा सकता है ? उनकी इन बातों के सामने आज की बातें सुन कर आश्चर्य ही नहीं खेद भी होता है। लोग द्विविधा में पड़ सकते हैं कि उनका कौन-सा कथन प्राप्य है ?

वास्तव में राजा जी एक बड़े पंडित और विशिष्ट बुद्धि के व्यक्ति हैं। एक कहावत है कि 'पंडित नया और वैद्य पुराना' अर्थात् पंडित नए अधिक विश्वमनीय होते हैं और वैद्य पुराने। साथ ही जिम प्रकार अति मधुर फल भी अधिक पक जाने पर अपनी मधुरता स्थिर नहीं रख सकते हैं, उसी प्रकार विशिष्ट बुद्धि भी अति परिपक्व होने के पश्चात् परिवर्तित होने लगती है। अतः हम तो उनकी पुरानी बातों को ही मानने के पक्ष में हैं। उन्हें अब अपने ही कथनानुसार राजनीति से सन्यास ले लेना चाहिए, अन्यथा उनके कथनों में अपत्याशित फल भी हो सकते हैं।

हिन्दी के राज्य-भाषा होने का अभिप्राय यह नहीं है कि अन्य प्रान्तीय भाषाओं का हानि हो। उन को तो और विकास होने का अवसर मिलेगा, क्योंकि शिक्षा का माध्यम और प्रान्तीय व्यवहार की भाषा, प्रान्तीय भाषाएँ ही होंगी। इस बात को राजा जी ने भी स्वीकार किया है। भारत में ऐसा हुआ भी है। संस्कृत जब राज-भाषा थी, तब भी अनेक प्राकृत भाषाएँ फूल फल रही थीं। उनमें साहित्य-निर्माण भी प्रचुर परिमाण में होता था। लोगों को आधिकाधिक भाषाओं के जानने का शौक था। संस्कृत के प्रासिद्ध गीत-ग्रन्थ 'साहित्य-दर्पण' के प्रणेता महापात्र विश्वनाथ उड़ीसा के ही थे। उन्होंने 'पोडश भाषामयी प्रशस्त रत्नावली' नामक ग्रन्थ की रचना का गौरव प्राप्त किया था और वे स्वयं अपने को अष्टादश भाषावार विलासिनी भुंजक कहते हैं। भाम, कालिदास आदि ने भी अपने नाटकों में संस्कृत के साथ क्षेत्रीय भाषाओं का उपयोग कर उनका समादर किया है। यही नहीं यदि राष्ट्रभाषा के नाते संस्कृत अन्य भाषाओं का विकास रोकती तो हिन्दी आदि प्रादेशिक भाषाओं की उत्पत्ति ही नहीं होती। अतः यह कोरा भ्रम है कि हिन्दी के राज भाषा होने के कारण प्रान्तीय भाषाओं का विकास रुक जाएगा।

दक्षिण भारत विशेषतः मद्रास के लोगों की यह आशंका कि उन्हें जो आखिल भारतीय-मेवाओं में अधिक स्थान मिलते हैं, नहीं मिलेंगे; समाचीन नहीं है। वे अपनी प्रतिभा और परिश्रम से अपना स्थान कायम रख सकते हैं। क्या उपराष्ट्रपति श्री राधाकृष्णन इंग्लैंड के निवासी हैं कि उनकी अंग्रेजी पर अंग्रेजों को भी आश्चर्य होता है ? श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की

अंग्रेजी पर अनेक पाश्चात्य विद्वान् सुभ्रंथे। यदि वे लोग राष्ट्र-भाषा के साथ महानुभूति नहीं रखते हैं तो उनको क्या अधिकार है कि विदेशी भाषा के भरोसे अपनी आवादी की ओर मत में अधिक संख्या में शामक बन कर मौज उड़ाएँ। उनके इस द्राविड़ प्राणायाम पर विद्वान् श्री केनाशविहारी लाल का वह सुभाव जोर पकड़ सकता है जो उन्होंने २१ नवम्बर को राज्य-सभा में दिया था कि केन्द्रीय सेवाओं के स्थान, प्रत्येक राज्य के लिए उसकी आवादी के अनुपात से निश्चित होने चाहिए।

अंग्रेजी एक अन्तर्गोष्ठीय व्याप्ति-प्राप्त समृद्ध भाषा है, यह सभी मानते हैं। योग्य विद्या व्यसनी व्यक्ति अंग्रेजी ही क्या अनेक विदेशी भाषाएँ पढ़ सकते हैं। परन्तु उसे अनिवार्य रूप से सब को पढ़ना राष्ट्रीयता की दित-दानि है, जो शोभा नहीं देती। यदि हृदय की विशालता में काम लिया जाए तो हिन्दी के विरोधियों में भी राष्ट्रीयता के नाते उसके प्रति वही सम्मान हो सकता है जो प्रान्तीयता के नाते मातृभाषा के प्रति है। यह कहना कि अंग्रेजी के बिना विज्ञान आदि की शिक्षा असंभव हो जाएगी, निराधार है। क्या हम में अंग्रेजी के ही माध्यम से विज्ञान पढ़ाया जाता है कि वहाँ वालों ने कृत्रिम चन्द्र का चक्कर करार समस्त संसार के वैज्ञानिकों को चक्कर में डाल दिया है। हाँ यदि हिन्दी में विज्ञान सम्बन्धी ग्रन्थों का अभाव है तो शीघ्र उनका उचित अनुवाद कराने का प्रयत्न करना चाहिए। बहुत पहले ही हैदराबाद के निजाम ने एक अनुवाद समिति, (ट्रांसलेशन ब्यूरो) की स्थापना की थी। उसके द्वारा समस्त आवश्यक ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू में होता था। उस्मानिया यूनिवर्सिटी में उच्च शिक्षा का माध्यम भी उर्दू थी। यहाँ तक कि एम्. बी. बी. एम्. की उपाधि भी उर्दू माध्यम से प्राप्त हो सकी थी। तो क्या यदि हैदराबाद के निजाम सब आवश्यक ग्रन्थों का अनुवाद उर्दू में करा सकते थे तो भारत सरकार उनका अनुवाद हिन्दी में कराने में अममथ होगी? कदापि नहीं। हाँ यह अवश्य है कि “जहाँ चाह कहीं राह।”

राजा जी आदि का यह तर्क हास्यास्पद जान पड़ता है कि जब तक हम राष्ट्र-मण्डल में हैं, तब तक अंग्रेजी अनिवार्यतः रहे। ऐसा कहते हुए वे भूल जाते हैं कि भारत राष्ट्र-मण्डल में बराबरी की हैसियत से है।

इसीलिए इससे ‘ब्रिटिश’ शब्द निकालने की आवश्यकता पड़ी थी। वैसे तो भारत क्या सभी देश राष्ट्र-संघ के सदस्य हैं तो क्या सब, सबकी भाषाएँ अनिवार्य रूप से पढ़ें। इसी प्रकार वे कहते हैं कि हिन्दी को राजभाषा बनाना प्रजातन्त्र के सिद्धान्त के विरुद्ध होगा। पता नहीं प्रजातन्त्र की कौन-सी परिभाषा उनके मस्तिष्क में है? अन्यथा इस पद्धति में बहुमत से काम होता है? और उसी आधार पर यह निर्णय किया गया है।

जब विद्वान् बना तब सभी प्रान्तों के लोग थे। सबकी सम्मति से हिन्दी के सम्बन्ध में निर्णय किया गया। १५ वर्ष का समय भी गौन समझ कर रखा गया था। इतने दिनों में कोई बालक पढ़ना प्रारम्भ कर स्नातक हो सकता था। अतएव हमें उस विद्वान का सम्मान करना चाहिए और जब तक राष्ट्रीय-सुरक्षा को कोई खतरा न हो उसमें परिवर्तन की बात नहीं सोचनी चाहिए और उसके लिए भी तो आवश्यक बहुमत अपेक्षित है। कुछ लोग ऐसे भी हैं जो प्रमत्त प्रलाप करते हैं कि ‘English over Hindi never’ उनके लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि ऐसे लोग केवल इसीलिए बोलते हैं कि लोग उन्हें इसी बहाने जान जाएँ। ऐसे गज्जन अपनी मातृभाषा का भी अन्याय करते हैं। हाँ, एक बात कहने का लोभ संवरण नहीं कर सकता कि उनका स्वप्न साकार होना असंभव है। अतः अच्छा होगा कि वे भागत की नागरिकता का परित्याग कर इंग्लैण्ड में जाकर निवास करें। तभी उनके पास इंग्लिश ever रह सकेगी।

महाकवि माघ का कथन कि ‘ममय एवकरोति बलाबलम्’ यथार्थ है। ममय जिसको जो अवसर देता है, बिना किसी ईर्ष्याद्वेष के उसको उसका उप-भोग करने देना चाहिए। वास्तव में खड़ी-बोली जो राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकृत हुई है, मातृभाषा के रूप में बहुत सीमित क्षेत्र में प्रयुक्त होती है। ब्रज, अवधी, भोजपुरी आदि अनेक बोली वालों को खड़ी-बोली सीखनी पड़ती है। ‘हम मोण हैं’ को भोजपुरी में कहते हैं कि ‘हमनी का सूतल बानी’ और वे ‘सो गए थे’ को कहते हैं कि ‘उहाँक सूति गयल रहली’। देखिए कितना अन्तर है? परन्तु उन लोगों को कोई द्वेष नहीं है। जहाँ तक मैं समझता हूँ दक्षिण के आन्ध्र, केरल आदि

में भी कोई खलबली नहीं है।

अतएव हम हिन्दी के अकारण विरोधियों से निवेदन करते हैं और आशा करते हैं कि यदि वे समस्त भारत के लोगों में पारस्परिक सौहार्द चाहते हैं, राज-नीतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक एकता को दृढ़ करना

चाहते हैं, और चिरकाल के पश्चात् प्राप्त सार्वभौमिक स्वतन्त्रता को अलुप्य रखना चाहते हैं तो सहृदयता पूर्वक विचार करें और यथा सम्भव शीघ्र हार्दिक स्वागत करते हुए हिन्दी को गले लगाएँ।

वाराणसी

—एक प्राध्यापक

विश्व-शान्ति की समस्या

शहर के सबसे बड़े होटल के ऊपर वाले कमरे में दो महान् पार्टियों के नेता परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। तब हुआ था कि दोनों मिल कर कुछ ऐसी मान्यताएँ निश्चित करें, जिनसे दोनों पार्टियों का कल्याण संभव हो। इस समय वे विश्व-शान्ति की समस्या पर अपनी राय प्रकट कर रहे थे। एक ने कहा : “मेरी राय में अमेरिका विश्व-शान्ति के लिए ज्यादा जिम्मेवार है। उसकी उपनिवेशवादी नीति डालर का लोभ दिखा कर निर्बल राष्ट्रों को अपने चंगुल में जकड़ी जा रही है। पर यह ज्यादा दिनों तक चलने वाली नहीं। विश्व की जनता जाग...”

“पर... दूसरा, जो शायद प्रो-अमेरिकन था, बीच में ही रोकने हुए बोला : “आप सही रास्ते पर नहीं ! विश्व-शान्ति के लिए अमेरिका नहीं रुस ज्यादा जिम्मेवार है। हंगरी में उसने जो कत्लेआम किया है, वह नादिरशाही को मान कर देनेवाला है।...”

घण्टों बहस चलनी रही। वे एक-दूसरे की बात काटते रहे और उनका पारा गरम हो ऊपर चढ़ता गया। अब उनका आवेश अपने चरम बिन्दु पर था।

“दुत् !”—घंटों की बक-बक से खीज कर पहले ने कहा : “आपको वर्तमान राजनीति का कुछ भी नॉलेज नहीं !”

“आप वर्तमान राजनीतिक मामलों में बुद्ध हैं !”—दूसरे ने ऊँचे स्वर में प्रतिवाद किया।

फिर जो तू-तू में-में चली तो कमरे की दीवारें चरमरा उठीं। होटल के मैनेजर ने आकर निवेदन किया : “महाशय ! तशरी फ़ले जाएँ ! क्यों बेकार सोनेवालों की शान्ति में खलल डालते हैं ?”

गुरुकुल, महाविद्यालय
देवघर बिहार,

—श्यामनन्दन शास्त्री

भील के कमल

में एक ठंडी सॉस खींच कर बुदबुदाता हूँ, “चलो दो घण्टे की छुट्टी हुई।”

दो घंटे ! यानी छः बजे शाम !—भवाली से भीमताल को आखिरी बस इतने ही बजे छूटती है। नैनीताल से यहाँ थोड़ी देर पहले और पहुँच जाता तो यह बस न छूटती। गई हुई बस की गूँज घाटियों में अब भी सुनाई पड़ रही है। यात्री लोग खुश-खुश भीमताल पहुँच कर भील देखने की उत्कंठा में दूबे होंगे ! खिड़की से दिखती हरी-भरी पहाड़ियों की ओर उँगली उठा कर जगह-जगह की रमणीयता की ओर संकेत करके आपस में बातें करते होंगे। हर मोड़ के धक्के से मंजिल की निकटता का अहसास उन्हें हर्ष-विभोर कर देता होगा। और मैं ?... मैं यहाँ भवाली स्टेशन पर खड़ा अपने दोनों हाथों को भीज रहा हूँ और मन-ही-मन उस बसड़ाइवर को गालियाँ दे रहा हूँ, जिसने रास्ते-भर में तीन बार रुक कर मोटर के इंजिन की जाँच-पड़ताल की थी और यहाँ पाँच मिनट लेट पहुँचाया था...सिर्फ पाँच मिनट ! जितनी कि उँगलियाँ होती हैं !...पर अब तो दो घण्टे यहाँ गुजारने ही पड़ेंगे।

नूँक मजबूरन यहाँ रुकना पड़ गया है, मैं इधर-उधर नजर दौड़ा कर मन को बहलाए रखना चाहता हूँ...सूरज उस सामने वाली पहाड़ी के ठीक ऊपर चमक रहा है। आसमान में बादलों के कुछ टुकड़े भी हैं, जिनकी छाया पहाड़ियों पर इस तरह पड़ रही है, गोया सूखने को कपड़े फैला दिए गए हों। हवा के स्पर्श से चारों ओर बोंस की पत्तियाँ शोर पैदा कर रही हैं।

मैं ऊपर से अब अपनी दृष्टि नीचे लाता हूँ। सब-स्टेशन पर कई बसें खड़ी हैं—मुक्तेश्वर जाने को, कुछ रानीखेत-अल्मोड़ा और कुछ नीचे—काठगोदाम हलद्वानी। बसों में बैठे यात्री भौंक-भौंक कर भवाली को नजर लगा रहे हैं। कुछ चाय की दुकानों पर खड़े चाय पी रहे हैं। ड्राइवर भौं पू बजा-बजा कर उन्हें बुला रहे हैं, पर वे प्याले की समूची चाय पी लेने की व्यग्रता में

इधर ध्यान नहीं दे रहे हैं। उधर दो तीन फल की दुकानें हैं।...

पैट की जेब में दोनों हाथ डाले शुतुर्भुग की तरह एक-एक कदम तौल-तौल कर मैं उधर ही बढ़ता हूँ। दुकानें करीबों से सजी हैं। पहाड़ी फलों में खूबानी और माल्टा ही आ पाए हैं। कुछ देशी फल भी हैं। ममलन् कंधारी अनार, नागपुरी संतरे, लीचियाँ और लखनऊ के पीले-पीले खरबूजे। सुर्ख टमाटर भी रखे हैं, जीवने के रस से भरपूर तरोंताजा, जैसे इस मई की गर्मियों से उन्हें कुछ लेना-देना नहीं...

और तब मुझे सहसा याद आता है कि यहाँ एक सेनेटोरियम^१ भी है। सेनेटोरियम ! क्षयरोगियों का अस्पताल ! मेरी नजर पढ़ली बार सेनेटोरियम के फाटक पर जाती है, जहाँ उमका नाम लिखा है। ऊपर को पहला कंकरीला रास्ता चला गया है। दोनों ओर फूलों की पंक्तियाँ हैं और सब से ऊपर बैरकनुमा इमारतें ! आमपाम इसी तरह की ओर भी इमारतें हैं और कुछ काटेज भी। सूरज की रोशनी सब पर पड़ रही है। पर मुझे लगता है, उनकी दीवारों पर चमक पैदा नहीं होती...जैसे वे धुँएँ से गाढ़ी हो गई हैं, चीखों-कराहों से निस्पन्द, बिल्कुल जड़ हो गई हैं.....

मैं पास ही एक बेंच पर बैठ जाता हूँ। फलवाला मेरी ओर उत्सुकता से देखता है लेकिन मैं उससे कुछ नहीं कहता। इस क्रिया को सम्पूर्ण ग्रहण कर पाने में मेरी दृष्टि अमफल हो रही है। लगता है मेरी चेतना कई स्तरों में बँट गई है। सब से ऊपरी स्तर पर भवाली का यह बसस्टेशन है, सेनेटोरियम की बिल्डिंग है, काटेज है। मेरे सामने की ये चाय और फल की दुकानें हैं और इन सब से जुड़ी व्यस्तता है, शोर है, खामोशी है; पर सब से भीतरी स्तर पर भीमताल की वही भील चूम रही है। सुन्दर निर्मल जल वाली भील ! लहरों की हल्की-हल्की सलवटों से बुनी नीले स्वेटर-सी चित्ता-कर्षक भील !.....उस भील में कमल नहीं हैं—मैं

१ बस स्टेशन तथा सेनेटोरियम की Situation में यथार्थ की अपेक्षा कल्पना से काम लिया गया है।

जानता हूँ—पर मेरा मन कल्पना कर रहा है कि उनमें कमल हैं—सफेद-सफेद नाजूक कमल और गोल-चिकने तैरते पत्ते। बगैर कमल की झील की कल्पना करने को जी नहीं चाहता। कमल, लगता है, झील की शिराओं में गुप-चुप बहते जीवन का स्पन्दन है, स्फुरण है... उसके बिना झील शीहीन है, विधवा है.....

झील के कमल !.....मेरी अंगुलियाँ काठ की खुरदुरी बेंच पर ही कमल की आकृति बनाने लगती हैं और मैं गुनगुनाने लगता हूँ '...ये कमल से फूल लेकिन मानस के हैं...'

जिन मित्र के यहाँ भीमताल में मुझे ठहरना है, उन्होंने अपने पत्र में मुझे लिखा था : 'नैनीताल की तरह भीमताल की झील के चारों ओर घोंडा कुदाने के लिए सीमेंट की रेलिंग से घिरी सड़क नहीं है। होटलों, कैफ़े और सिनेमा-घरों की भीड़ नहीं है। रात को बत्तियों की झिलमिल ल्यायाओं का झूठा रोमांस नहीं है, शायद वह कुछ नहीं है जो सभ्यता के कृत्रिम चश्मे से देखने पर लुभावना और आकर्षक लगे, लेकिन तुम आओगे तो इस झील की मौन-ममता चारों ओर से घेर कर तुम्हें ऐसे ढँक लेगी, जैसे भँवरे को कमल !...'

और मेरी आँखों के आगे पुतली के बिन्दु पर जैसे झील की धुन्ध उठने लगती है...मेरे रोम-रोम से वह धुन्ध लिपटने लगती है और जैसे जादू के जोर से सामने एक रास्ता-सा खुल जाता है—झीलों के देश में !...नौकुचिया ताल...मात ताल जल दमयन्ती ताल.....

काठ की बेंच पर बैठे ही बैठे मैं स्वप्नस्थ हो गया हूँ। एक क्षण को बस-स्टेशन और आम-पाम का सारा यथार्थ बिलकुल ही डूब गया है।...पर सहसा ही एक स्पर्श से मैं चौंक पड़ता हूँ। मेरी बगल में एक युवक आकर बैठ गया है। मैं उसके चेहरे की ओर देखता हूँ और आँखों की पुतली पर छाई हुई धुन्ध एकाएक ही कट जाती है, झील की मनह माफ हो जाती है...पर इस झील में स्पन्दन नहीं, उत्साह नहीं, कोई ताजगी नहीं—भुर्रियों की काई जमी है, हताश की गहरी लीकें झारपार खिंची हैं और सॉस लेने से कमल की गन्ध नहीं आती—क्योंकि उसमें कमल हैं ही नहीं—एक मायूसी और विरक्ति का तीखापन उभर आता है।

मैं एकदम से चेतना के ऊारी स्तर पर आ जाता

हूँ। तब समझ में आता है कि मैं भवाली के बस-स्टेशन की एक बेंच पर बैठा हुआ हूँ...भवाली ! जहाँ क्षय के रोगियों का सेनेटोरियम है। मैं कुछ सतर्क हो जाता हूँ। ...एक बार कट्टर विचारों की एक धार्मिक महिला ने मुझसे कहा था, क्षय-रोगियों के कीटाणु ढाई मील के घेरे में 'उड़ते' रहते हैं।"

वह युवक, जैसे अभी तक सुस्ता रहा था, उठता है और फलवाले के पाम जाकर खड़ा हो जाता है। फूलवाला पूछ रहा है, "बाबू साहब कैसी हालत है छोटे भैया की?"

मुझे युवक का चेहरा दिखाई नहीं पड़ रहा है—उसकी पीठ मेरे सामने है—पर मुझे लग रहा है कि झील पर एकाएक फिर धुन्ध छा गई है, लहरों में एक कमजोर सा स्पन्दन हुआ है, कठुआ की एक चीरती हुई लकीर खिंच गई है और जैम तल की अथाह गहराई में छिपा हुआ पराजित, क्षत-विक्षत दुर्योधन बोल रहा हो, "नहीं...कोई फर्क नहीं, वैसी ही है।"

वैसी ही...मैं दुहराता हूँ—यानी बहुत खराब ? डाक्टरों-नर्सों की फुमफुगाहट 'कोई उम्मीद नहीं' को अर्थ देने वाला ?...बोत लंग ? लोबेक्टोमी ?...'

लेकिन इस भयंकर से भयंकर कल्पना काटता हुआ फल वाला उसी सहज भाव से फिर खड़ा है, "फेफड़े में हवा तो सुबह भरी गई थी..."

अबकी युवक साफ़-साफ़ बोलता है, "हाँ भाई, लेकिन उतने से ही क्या होता है...फेफड़े में कई छेद हैं। डाक्टर कुछ गाफ़ नहीं कहते। ज्यादा पूछने पर फ़िझिक देते हैं, अभी तक कहाँ सो रहे थे ? अब बोलो, क्या सब कुछ अपने बस की बात होती है ?"

फल वाला महान् दार्शनिक की तरह अपने दोनों हाथ ऊपर—टीन की छत की ओर—उठा कर कह रहा है, "भगवान् ही सब कुछ करते हैं, उन्हीं पर भरोसा रखो बाबू..." और एक क्षण बाद झट से अपना तराजू सम्हालते हुए कहता है, "...अभी ताज़ी ख़बानियाँ आई हैं, बिलकुल पकी और रस से भरपूर, छोटे भैया को खिलाइए ईमर ने चाहा तो सब ठीक हो जाएगा..." और दृष्टि को संकुचित करके पूछता है, "तोल दूँ एक सेर ?"

युवक की अंगुलियाँ गोल-गोल नारंगी रंग की ख़बानियों से खेल रही हैं। वह कुछ दिक्कियाहट और

संकोच से कहता है, “हाँ तोल दो...पर...पर पैसे आज भी नहीं...”

फलवाले के हाथ में नाचती हुई तराजू धम जाती है, युवक जल्दी से कहता है, “लेकिन इस महीने की आग्निर तक पाई-पाई चुका दूँगा, यकीन रखो।” उसके स्वर में भिखारियों की सी याचना और दयनीयता है। मुझे तनिक भी आश्चर्य नहीं हो रहा है क्योंकि न जानते हुए भी मैं कल्पना कर सकता हूँ कि यह शायद शायद महीनों से अपने इकलौते भाई को मौत के मुँह से छीन लाने की आशा में यहाँ टिका हुआ है... शायद यह किसी आफ्रिका का मामूलीमा सो-डेड-सो पाने वाला मुलाजिम होगा और बाल-बच्चेदार आदमी। जिम्मेदारियों से घिरा हुआ, छोटी-सी गृहस्थी का मालिक। शायद वहाँ कहीं से रुपए आने का इन्तज़ार कर रहा हो।...

लेकिन फलवाला शायद यह सब कुछ जानते हुए भी आश्चर्य के साथ कह रहा है : “वाह बाबू, आप तो गजब करते हैं... ..अभी परसों ही तो आपने आज का वायदा किया था? आज तो बड़ा आसरा था, भला बताइए ऐसे कितने दिन काम चलेगा?” फिर युवक के बुझे और अराधी से लगने वाले चेहरे की ओर देख कर स्वर को मुलायम बना कर उस पर सहानुभूति की चटक कलई चढ़ा कर कहता है : अचछा ...ये लीजिए खुबानियाँ और खिलाइए छोटे भय्या को पैसा तो आता जाता रहता है। मुसीबत में जो काम न आए मैं कहता हूँ, वो आदमी नहीं है शैतान है शैतान.....मेरे पैसे कहीं भागे थोड़े ही जाते हैं।”

युवक कृतज्ञता से झुक-झुक जाता है, शायद उसके नेत्रों में आँसू भी छलक आए हों.....वह सिर्फ इतना ही कह पाता है.....हाँ भाई, हाँ...”

फलवाला खुबानियाँ तोलते-तोलते कहता जा रहा है : “लेकिन बाबू जी, ज़रा ध्यान रखना, हाथ आजकल तंग हैं ज़रा...”

हाथ वैसे तंग न भी हों तो भी फलवाला जानता है कि ऐसे लोग टूट-टूट जाँय पर ईमानदारी का दामन नहीं छोड़ते...दूसरे का पैसा मारना पाप समझते हैं।

युवक खुश-खुश चला जा रहा है, वहाँ...जहाँ उसका कमल लोहे के एक कॉट पर फिट किया हुआ दिन-दिन मुरझा रहा है...पँखुरी रक्त शून्य होती जा

रही है...एक-एक सौम कम हो रही है...

और सहमा ही मुझे लगने लगा है कि आमपास सब कहीं कहीं मुरझाते हुए कमलों की गंध भर गई है...खून थूकते हुए कमल, खौंसते हुए कमल, दम तोड़ते हुए कमल.

मैं बेंच में उठ कर खड़ा हो गया हूँ। अभी-अभी ऊपर से एक बस आकर नीचे चली गई है। बस में बैठे कुछ यात्रियों की कुछ आँखें—नत्सुकता और कौतूहल से चमकती हुई आँखें—एक जुलूम की तरह सर्द से गुजर गई हैं। वे आँखें शायद मनेटोरियम के गेट को देख कर क्षण-भर के लिए फैल गई होंगी। उन यात्रियों के दिल किसी अनजानी शंका से एक बार तेज़ी से धड़क गए होंगे। उनके होठों ने फुमफुमा कर कहा होगा...यही है टी. बी. के मरीजों का हस्पताल...,

मैं फिर चढ़ल कदमी करने लगा हूँ। अभी सिर्फ पैंतालीस मिनट ही बीते हैं। सवा घण्टा और ! अब सूरज थोड़ा और पीला पड़ गया है, धूप की किरणें तिगड़ी पड़ रही हैं, ज़िममे बुझ के लाल दहकते गुच्छे कुछ अधिक चमकने लगे हैं। खामोशी है, कहीं भी कोई दरार नहीं, सिहरन नहीं। भील की सतह पर जैसे काँड़े की मैकड़ों पतें बिछी हुई हैं। कोई बस या ट्रक गुजरती है तो शिकन-सी पड़ जाती है, फिर मिट जाती है।

चाय की दुकानों पर दो-चार पहाड़ी बैठे चाय पी रहे हैं। मैं उनके पास से गुजरता हूँ। उनमें से एक कह रहा है...पहाड़ों में अब वैसी रौनक कहाँ रही...समय ही चला गया उसका...आने को तो अब भी लोग आते हैं और पहले में ज़्यादा लेकिन बस (और यहाँ उसने हाथ की उँगली से एक संकेत किया) पतलून में हाथ डाल कर घूमने वाले, पैसे खर्च करना तो जानते ही नहीं पैसे खर्च करना तो गोरे जानते थे। एक की जगह दम देते थे...

मिट्टी की बड़ी-सी रक्ताबी में रखे हुए पीले रायते के चारों ओर बैठ मक्खियाँ दावत उड़ा रही हैं—उन्हें तीखी नज़र से भगाने का प्रयास करते हुए मैं आगे बढ़ जाता हूँ। दिन में कई बार चाय पीना और लगे-हाथों इम्मीनान से बीते का गुणगान कर लेना ये पहाड़ी भी सीख गए हैं। बीते का मोढ़—चाहे वह “बीता” कितना ही बुरा हो—सभी करते हैं। क्या यह भी जीवन की एक शाश्वत Value नहीं है ?

...सेनेटोरियम के गेट से मैं ऊपर चढ़ रहा हूँ। मैं नहीं जानता कि ऊपर जाने का अधिकार मुझे है या नहीं, पर एक अजब-सी विवशता मुझे ऊपर खींच ले जा रही है। शायद वहाँ ऊँचाई से पीले सूरज को डूबते हुए देखना अधिक अच्छा लगता है। हरी-नीलाभ पहाड़ियाँ सगे-सम्बन्धियों सी डब-डबाई खड़ी हों और उनके देखते ही देखते सूरज अत्यन्त क्षीण होकर बुझता जाए, बुझता जाए और फिर सहसा ही जैसे किसी आघात से टूट कर डूब जाए—रोज-रोज की विदा, विदा की यह आश्रुति वहाँ—सेनेटोरियम के पास, ऊँची जगह से देखने की चीज है। क्योंकि जनरल वार्ड से सटती हुई कराहों की टूटी ध्वनियाँ वास्तविकता का पुट दे कर प्रभाव को पूरा बना देती हैं। पश्चिम दिशा तोलिये की तरह बिछी रहती है, सुन्न खूनी बादलों के धब्बे छाए रहते हैं। इन धब्बों में से कभी-कभी बड़े प्यारे-प्यारे चेहरे उभरने लगते हैं।... फिर सूरज डूब जाने के कुछ देर बाद तक एक तारा चमकता रहता है, जैसे, यह क्षितिज सूर्यास्त की यह क्रिया, इस 'होने' की एकान्तिक पीड़ा को मेल न पाए, उसकी आत्मा स्थाणु न रह सके, उसका एक अंश टूट कर प्रंत की तरह भटकने लगे.. लट्टू की तरह किसी अनदेखी धुरी के चारों ओर नाचने लगे।...

ऊपर जनरल वार्ड के पास मैं खड़ा हूँ। अन्दर से डाक्टरों और नर्सों के आने-जाने की पदचाप सुनाई पड़ रही है। ट्रे में खटकती हुई मिक्सचर की शीशियाँ बोल रही हैं। मरीज केवल द्रष्टा हैं। उनका अपने पर कोई अधिकार नहीं रहा। सिस्टर के कदमों पर बाँह में सुई चुभवा लेना, कबूती गोखियाँ निगल लेना, सुबह-शाम गर्म पानी से 'स्पंज' करवा लेना, बोलना, लेटना, मोना-जागना—सब कुछ एक परायेपन के भाव से ओढ़ लिया है उन्होंने। स्वयं के लिए वे कुछ नहीं रहे, मात्र एक 'कम' रहे, बेड नम्बर रहे। और उनके अलग-अलग चेहरे भी नहीं रहे—केवल रास्ते पर लगी हुई एक तख्ती रही जिस पर पढ़ कर जाना जा सके कि अमुक की मंजिल कितनी दूर है...मांजल प्यारी जिन्दगी या मौत...

अन्दर से ट्रे लिए हुए एक नर्स निकल रही है। मुझे खड़ा देख कर ठिठक जाती है। फिर पूछती है—

“वान्ट टू मीट सम बौड़ी?”

“नो...”

“...देन डोन्ट स्टैण्ड हियर अननेसेसरीली” और वह एक तीखी नजर फेंक कर चली जाती है।

वह चली गई है पर मुझे लगने लगा है कि यह नर्स नहीं है...केवल एक व्यवस्था है, एक प्रणाली है जो गटापारचे के खिलाफों की तरह चाभी देने पर बोलने लगती है, उसके भीतर 'टेपरिकाडेंड' शब्दों-वाक्यों का जखीरा है जो बिना किसी प्रेरणा के बजता रहता है...

सूरज पहाड़ी के सिरे पर झुक आया है। वार्ड की दीवारों पर रोशनी की छाया भर है—एक धुंधली-सी बेजान छाया। मैं सोच रहा हूँ कि यह घिराव कैसा है? यह ममूची की ममूची क्रिया इतनी जब, इतनी निस्पन्द कैसे हो गई?...भील पर निष्करण शून्यता का यह कैसा अभिशाप टेंगा हुआ है...

एक घण्टी टन से बजती है। ध्वनि की तरंगें बाँहें खोल कर बढ़ती हैं और दूर घने जंगलों के बाहुपाश में हमेशा के लिए विलीन हो जाती हैं। समय-सूचना का यह ढंग कितना भयावना लगता है! मन पर समय के तेजी में गुजरते जाने का आतंक अमिट बन जाता है। मेरी तरह इस घण्टी को मरीजों ने भी सुना होगा और महमा ही उन्हें अहसास हुआ होगा कि जिन्दगी का एक घण्टा और गुजर गया...

मैं नीचे उतर रहा हूँ।

एक कोने में लकड़ी की Bee hive रखी हुई है। बाहर से मधु-मक्खियाँ फूलों का शहद ला कर इनमें जमा कर रही हैं। फेफड़े की तरह छेददार छते के कोष्ठों में शहद भरा जा रहा है। जीवन की आवश्यकता की पूर्ति का साधन इकट्ठा हो रहा है और मधुमक्खियों में गुंजन है, स्फूर्ति है, तन्परता है। मैं उतरते-उतरते पीछे मुड़ कर जनरल वार्ड की ओर देख लेता हूँ—वहाँ छत्तों का शहद कीटाणु खाते जा रहे हैं, कोष्ठ खाली हो रहे हैं, जीवन की अवधि कम होती जा रही है...और कमल मुरझाते जा रहे हैं, उनमें बची हुई घण्टी की गूँज है, समय के बीतते जाने की आहट है।

भील अब भी छँपी हुई है, उसमें कोई दरार नहीं। सर्वत्र मज्जाटा और सूरज के डूबने में अब देर नहीं है। बुरस के लाल दहकते गुच्छे बुझ चले हैं। ऊँचाई पर चढ़ कर सूरज का डूबना मैं नहीं देख पाऊँगा... नहीं..., कि एकाएक तभी ऊपर से एक जोर की चीख सुनाई पड़ती है और कई कराहों से फूटती हुई क्रन्दन-

ध्वनि...में ठिठक पड़ता हूँ। एक सूरज डूब गया। हमेशा की भूखी घाटियों के उदर में समा गया। सब कुछ शेष हो गया। पर इस चीख को क्या और किसी ने नहीं सुना? सब कुछ शान्त है, जरा भी हलचल नहीं। जैसे इसमें कोई नवीनता नहीं। ऐसा रोज ही होता होगा। इसी से एक दूसरे को जोड़नेवाली जिज्ञासा की लड़ी भी टूट गई। मानवीयता की सारी डकाइयाँ लुप्त हो गईं।...हवा को चीरता कन्दन-स्वर तेजी से फैलता जा रहा है...

मैं जल्दी से मड़क पर आ जाता हूँ।

नीचे से आखिरी बम आ कर अड़्डे पर खड़ी हो गई है। मेरी दृष्टि आई हुई बम की तरफ नहीं है। मैंने यत्नपूर्वक नमो दृष्टा लिया है। यह बम भी कुछ उखड़े हुए कमलों को यहाँ फेंक गई होगी, यहाँ क गंदले जल में रोप गई होगी। मैं इसकी साक्षी बनना नहीं

चाहता।...मेरे कानों में वे कन्दन-ध्वनियाँ आकर टकरा रही हैं।...

...काफ़ी देर बाद अब मुझे लगने लगा है कि मेरी बस का समय हो गया है। अब वह यहाँ से मीम-ताल के लिए छूटेगी। लेकिन वहाँ की झील अब मुझसे बहुत दूर चली गई है.. बहुत दूर, इतनी कि मैं दिन-रात यात्रा करके भी वहाँ तक नहीं पहुँच सकता। वह मिथ्या है, केवल कल्पना!—उस झील में कमल नहीं है, हरिज नहीं...

सूरज कब का डूब चुका। मैं सिर उठा कर सेने-टोरियम के फाटक की ओर देखता हूँ—वहाँ से ऊपर धुंधले पट पर कमलों की आँखों में एक दिन और गुस्तर-जाने के कारण तारों से आँसू छलछला आए हैं। मैं उन्हें देखता जा रहा हूँ.....

२१६, मोहनशिमगंज,
इलाहाबाद—३

—मलयज

क्या आप जानते हैं ?

—सिंह-भूमि, बिहार में एक ऐसा बरगद का पेड़ है जो १०,००,००० वर्ग फुट के क्षेत्र में फैला हुआ है। इस पेड़ के नीचे २०,००० व्यक्तियों की कब्रें बनी हुई हैं।

—संयुक्त राष्ट्रसंघ की इमारत की ऊँचाई ५४४ फुट और चौड़ाई २८८ फुट है।

—संसार में अब तक ३६० “रेडियम” धातु पाई गई है। इसका प्रकाश १६०० वर्षों तक स्थाई रहता है।

—इटली का गिओवन्नी गोत्रेली नामक नेत्र बिहीन संगतराश मूर्तियाँ तराशने में इतना कुशल था कि अपनी अंगुलियों से केवल एक बार टटोल कर वह वस्तु की इच्छित आकृति तराश देता था।

—नई दिल्ली की स्थापना “सरण्डविनलटनस” ने तथा कलकत्ता की स्थापना “जानू चारनक” ने की थी।

—घड़ियों में पहले केवल धन्टा और मिनट बतानेवाली सुइयाँ हुआ करती थीं। सेकंड की सुई का आविष्कार एक अंग्रेज चिकित्सक सरजोन फ्लोयर (१६४९-१७३४) ने अपने मरीजों की नाड़ी की गति गिनने के लिए किया।

देगलूर, नंदिब

बम्बई-प्रान्त

गं० ल० ठगे देगलूरकर

“कीर-संदेशम्” : तेलुगु का एक दूत-काव्य

शृंगार-परक साहित्य में दूती और दौल्य कार्य को विशेष महत्व दिया गया है। प्रिय और प्रिया के समागम के लिए दूती का अस्तित्व अत्यन्त आवश्यक है। मान, मान-शान्ति, अमिषार, मिलन आदि कार्य, दूती के बिना असम्भव हैं। संस्कृत काव्य-परम्परा के अनेक ग्रन्थों में इस प्रथा का सुन्दर वर्णन है। ‘मेघदूत’, ‘हंमदूत’, ‘नेषध’ आदि प्रसिद्ध काव्यों में इसी का हृदयङ्गम वर्णन किया गया है।

अन्य देशी भाषाओं में भी इस रसमय विषय को लेकर काव्यों की रचना प्रचुर मात्रा में हुई है। तेलुगु भाषा भी इस विषय में पीछे कहाँ रही? ‘कीर संदेश’, ‘नल दमयन्ती’ आदि काव्यों में इसी का विशद वर्णन किया गया है। प्रस्तुत लेख में श्री सन्निधानमु सूर्य-नारायण शास्त्री जी के ‘कीर संदेश’ का संक्षिप्त परिचय दिया जाएगा।

शास्त्री जी तेलुगु के अग्रणी विद्वान हैं। ‘काव्या-लंकार शास्त्र’ और ‘तत्त्वम चन्द्रिका’ आपके प्रकाशित पाण्डित्य एवं मौलिक विचारधारा का परिचय देते हैं। पाण्डित्य के साथ-साथ आपकी कविता-शक्ति भी अप्रतिम है। सुन्दर-सुन्दर कविताओं में आप तेलुगु-शारदा के सौन्दर्य में चार चाँद लगा रहे हैं। ३१ वर्ष तक महबूब कालेज हाईस्कूल में काम कर, आजकल आप वैकटराम रेड्डी महिला महाविद्यालय में तेलुगु प्राध्यापक का काम कर रहे हैं।

‘कीर-संदेश’ आपका प्रौढ़ खण्डकाव्य है, जिसमें ‘महा भागवत’ के आधार पर रुक्मिणी के विवाह की कथा वर्णित है। यद्यपि कथावस्तु भागवत से ली गई है, किन्तु कवि ने मूल कथा में सुन्दर परिवर्तन किए हैं, जो बड़े ही हृदयंगम बन पड़े हैं। आचार्य आनन्द वर्द्धन का मत है कि :

“इतिवृत्तवशायातो त्यक्त्वाऽननुगुणाम् स्थितम्,
उत्प्रेक्ष्योऽप्यन्तराभीष्टरसोचितं कथोक्तम्”

अर्थात् काव्य में रस-प्रतिबन्धक प्रसंगों को परिवर्तित कर, उसे रसपूर्ण बना सकते हैं। और ऐसे रसपूर्ण

काव्यों में पुनरुक्ति का दोष तो कभी नहीं होता। यथा :

“न च तेषां घटतेऽवधिर्न च ते दृश्यन्ते कदापि पुनरुक्ताः
ये विभ्रमाः प्रियाणा मर्था वा सुकविवाणीनाम्”

‘कीर-संदेश’ काव्य की कथा संक्षेप में इस प्रकार है :

द्वारिका नगर में श्रीकृष्ण दुष्ट दमन और शिष्ट रक्षणा करते हुए शासन कर रहे थे। एक दिन सायं-समय वे उपवन की तरफ जा रहे थे तो पेड़-पौधे और लता-गुल्म ऐसे दिखाई पड़ रहे थे मानों वे भगवान् से विनय कर रहे हों कि हे भगवान् ! हमारा स्पर्श कर हमें कृतार्थ करो। उपवन में जब वे एक सुन्दर वृक्ष के नीचे बैठ गए तो उनका दक्षिण नेत्र फड़का और एक फल नीचे गिर पड़ा। इन शुभ लक्षणों पर वे विचार कर ही रहे थे कि एक पंचरंगी शुक उनके सामने आ खड़ा हुआ। अपने दक्षिण पक्ष को फड़फड़ाने के मिस उसने भगवान् को नमस्कार किया। तब भगवान् ने उससे प्रश्न किया : “तुम कहाँ की रहने वाली हो ? किस प्रयोजन से तुम्हारा आगमन हुआ ?

उम मारिका ने कहा : भगवन् ! आप तो सर्व-विज्ञ हैं, फिर भी मुझे कृतार्थ करने के लिए इस प्रकार पूछ रहे हैं। मैं अपनी कथा तो बाद को सुनाऊँगी। पहले मेरे आगमन का कारण सुन लीजिए। आपने कुंडिन नगर के राजा भीष्मक और उसकी पुत्री रुक्मिणी का नाम तो सुना ही होगा। वह तरुणी, बालकाल से ही आप में मन लगाए बैठी है। लोरियों में भी उसे आपका ही नाम पसन्द था। खेलते समय, किसी मन्त्री के आपका वेश धारण करने पर उसका मन प्रफुल्लित होता। इस प्रकार उसका प्रेम, उसके यौवन के साथ बढ़ता गया। (सूर गोपिकाओं के ‘लरिकाई को प्रेम’ के समान ही।)

रुक्मिणी के मयानी होने पर, नीच शिशुपाल ने भीष्मक के पास दूत भेजा कि रुक्मिणी का विवाह मुझ से हो। किन्तु भीष्मक ने सरासर इन्कार कर दिया। तब यह सुन कर कि वह आपसे मन लगाए

बैठी है, उस नीच ने सोचा कि कपटी कृष्ण, न जाने कब रुक्मिणी को ले भागे। अतः मुझे शीघ्रता से अपनी कामना पूरी कर लेनी चाहिए। यह सोच कर उसने कुंडन नगर को चारों तरफ से घेर लिया। तब रुक्मिणी ने अपने और अपने लोगों की रक्षा के लिए अपनी बहन को उसके हाथों में दे देना चाहा। यह समाचार सुन कर, मानों रुक्मिणी को काठ मार गया। होश आने पर उसने मुझसे कहा कि तुम जा कर भगवान् से इस दासी की रक्षा के लिए कह आओ। यदि वे न आयें तो आत्महत्या के कई साधन हैं। “मैं आकाश-मार्ग से आप के पास पहुँच गई। यह सब रुक्मिणी के सूत्रप्राय संदेश का मेरा भाष्य है। आप तुरन्त जा कर, उस अबला की रक्षा कीजिए।”

यह कह कर वह शुक बिजली के समान एक अपमरा बन गई। इस रूप-परिवर्तन को चकित हो कर देखनेवाले भगवान् से उसने कहा : मैं लक्ष्मी देवी की प्रिय सखियों में से एक हूँ। मेरा नाम विद्युत्ता है। एक दिन मेने लक्ष्मी की पंचरंगिया साड़ी का अपहरण किया था। भगवती ने नाराज होकर मुझे शाप दिया कि मैं पंचरंगिया शुक बन जाऊँ। रुक्मिणी का संदेश पहुँचा देने से शाप-मुक्ति मिल जाएगी। अब मैं शाप से मुक्त हूँ। मैं अपनी स्वामिनी के पास जाऊँगी। आप जा कर अपनी प्रेमिका को आनन्द सागर में मग्न कीजिए।

तुरन्त भगवान् सेना ले कर कुण्डन नगर जा पहुँचे और शत्रुओं को मार भगाया। तब रुक्मिणी आकर उनके पैरों पर पड़ी, अपनी विवशता को बतला कर क्षमा माँग ली। जहाँ शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह की तैयारियाँ हो रही थीं, वहीं पर, उन्हीं साधनों के द्वारा श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न हुआ। जिस फूल पर भौरा लालायित होता रहता है, उसे मानव अकस्मात् अपने हस्तगत कर लेता है !

श्रीकृष्ण रुक्मिणी को द्वारिका ले आए, अनेक कीड़ाओं से उन्हें प्रसन्न करने लगे। किन्तु रुक्मिणी के हृदय में चिन्ता लगी थी कि मेरे भेजे शुक का क्या हुआ। भगवान् ने एक दिन, किसी प्रसंगवश शुक की कथा सुना कर, उनके दुःख को दूर किया।

इस प्रकार मंगलादि, मंगलमध्ये एवं मंगलान्त होकर यह छोटा-सा काव्य सुन्दर बन पड़ा है।

‘भागवत’ की कथा और प्रस्तुत काव्य की कथा में निम्न लिखित परिवर्तन किए गए हैं :

भागवत के अनुसार रुक्मिणी एक द्विजवर को अपना दूत बना कर श्रीकृष्ण के पास भेजती है। रुक्मिणी मुग्धा है। वह अपने मनोभावों को वैसे ही दूसरों पर प्रकट नहीं करती, तब एक ब्राह्मण के सामने भले ही वह वृद्ध हो, गौरव-योग्य हो, वह पर-पुरुष तो है, वह अपने गूढ़ भाव कैसे व्यक्त करती ? दूसरी बात यह है कि उस ब्राह्मण को क्या पता कि रुक्मिणी अपने बाल्य-काल से ही कृष्ण के प्रेम में सरोवार है। उसका पता तो किसी मखी को ही रहता है। अतः कवि ने ब्राह्मण के बदले में एक कीर को संदेशवाहक के लिए चुन कर, अपनी सहृदयता का परिचय दिया है। कीर ने अपना भाष्य प्रस्तुत कर, अपने कर्तव्य की सुन्दर पूर्ति की है। इसी आधार पर काव्य का नाम ‘कीर-संदेश’ रखा गया है।

‘भागवत’ के अनुसार रुक्मिणी का भाई मदांध हो, अर्द्धकार के कारण, गुरुजनों की सम्मति के विरुद्ध, अपनी बहन रुक्मिणी को शिशुपाल को देना चाहता है। किन्तु, प्रस्तुत काव्य में वह चारों ओर घिरा जाकर विवश हो, उस प्रस्ताव को स्वीकार करता है। इस प्रसंग के कारण भी कीर का संदेशवाहक होना उचित प्रतीत होता है। क्योंकि जब सारा नगर घेर लिया गया, तो मनुष्य-मात्र बाहर कैसे जा सके ? दूसरी बात यह कि कवि ने भगवान् कृष्ण को मूँछ-केश मूँड़ने के अपमान-जनक कार्य से विमुक्त कर दिया है।

‘भागवत’ में ब्राह्मण लौट आता है और रुक्मिणी को श्रीकृष्ण के अभयदान की बात सुनाता है। जब यह बात मालूम हो गई तो रुक्मिणी के मन में वह उत्कण्ठा कहाँ रह जाएगी ? चिन्ता, दुःख के लिए स्थान कहाँ ? आवेश और आवेग खत्म हो जाता है। अतः कवि ने शाप और शाप-मुक्ति की कथा जोड़ कर कथा—सौन्दर्य में चार चाँद लगाए हैं।

इस प्रकार शास्त्री जी ने रस भंग करने वाले अंशों को सुन्दर रूप में परिवर्तित कर एक रसमय खण्ड-काव्य की सृष्टि की है। मानो नई बोटल में पुरानी मदिरा उँबेली है।

इस काव्य की भाषा में यद्यपि पाण्डित्य की झलक दिखाई पड़ती है, फिर भी भाषा बड़ी चलताऊ

और मुहावरेदार है। शास्त्री जी को मुहावरों से बड़ा प्रेम है। उनकी रचनाओं में मुहावरों का सुन्दर प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए ‘गज के लिए छत्री?’ “कैकने गए और पैर टूटा” आदि।

आपकी रचनाओं में अलंकारों का भी सुन्दर प्रयोग मिलता है। ‘कीर-सन्देश’ आपकी काव्य-माला का एक सुन्दर पुष्प है।

पब्लिकस्कूल, बेगमपेट
हैदराबाद (आन्ध्र-प्रदेश)

—जे. बी. भीमसेन ‘निर्मल’

तेलुगु का एक लोक-गीत

(धान कटते समय आन्ध्र-प्रदेश के गाँवों में
औरतें गाती हैं)

“भाविप नेचिते । बावये तंङ्गि
मन्निप नेचिते । मरदिये कोडुकु
वड्डिप नेचिते । वदिनए तल्लि
वेदम्मुलनु बोलु । विद्यल्लु लेवु
इमुक दिव्वेल गानि । इंकदे नीरु
कन्नतल्लिकि गानि । करगदे मनसु
अंडलेनि वूर । नुंड दोषम्मु
आश मालिनवारि । नडुग दोषम्मु
चेतगानि पनुलु । चेसिते रोट
नीति मालिन चोट । निलुबुंटे रोट
मोडिकेत्तिन दान्नि । मोगुडेमि जेसु
अड्डि तिरिगे दान्नि । अत्तेमि जेसु
आकलिवंति मंट । लोकान लेदु
तल्लिवंति बंधुवुलु । धरणि लो लेरु
एऊरु चूमिना । भावूरु गादु
एवर्नि चूचिना । मा वारु गारु
पुरुषुडु लेनि । पुव्वु मुडिचेमि सुखमु
तल्लि लेनि । पुट्टिटिकि । वेळ्ळेमि सुखमु
आरळ्ळ अत्तयिन । मवति पोरन

तल्लिल्लु दूरमैन । भरियिचलेमु ।”

अर्थ : अगर सद्भावना रहे तो जेठ ही पिता तुल्य है। अगर समझ-बूझ हो तो देवर ही पुत्र-तुल्य है। अगर अच्छा परोसती है तो भाभी माता तुल्य है। वेद के समान कोई दूसरी विद्या नहीं है। रेत के टीलों में ही पानी सूख जाता है। माँ का ही दिल पिघलता है। जिन गाँव में आश्रय नहीं हो, वहाँ रहना दोष है। जिन में लालच अधिक है, उनसे कुछ माँगना दोष है। जो काम नहीं आता हो, उसे नहीं करना चाहिए। जहाँ अच्छा बर्ताव न हो, वहाँ रहना दोष है। अपनी ही बात पर अड़ी रहनेवाली औरत का मर्द कर ही क्या सकता है? विद्रोही बहू का साम बिगाड़ ही क्या सकती है? भूख में बढ़ कर अधिक कोई बाधा नहीं है। माँ जैसा बन्धु दुनिया में और कोई नहीं है। कोई दूसरा गाँव हमारा अपना गाँव नहीं हो सकता। कोई दूसरा मर्द अपना मर्द नहीं हो सकता। जब मर्द नहीं है तो जुड़े में फूल लगाने के कोई अर्थ नहीं। अगर मायके में माँ नहीं है, तो वहाँ जाना बेकार है। भगड़ा करने वाली मास, ईश्वरी करनेवाली मौत के रहने और माता का अभाव जीवन में बड़ा ही दुःखदाई है।



कला-चर्चा

मध्ययुगीन चित्र-शैलियों में राधा

मध्ययुगीन कला, काव्य और संगीत के कृष्ण यदि नायक हैं तो राधा नायिका है। चित्रकार ने रंग-रेखाओं से उसे सजीव किया, काव्यकार ने पदला-ल्लित्य में उसे पाया और संगीतकार ने स्वरों में उसे गुनगुनाया। मध्य युगीन ललित-कलाओं की राधा प्राण बन बैठी। राधा की कल्पना ने इन क्षेत्रों में कला की एक नई प्रेरणा हमारे बीच उत्पन्न की। क्या कलाकार और क्या समाज सभी राधा के गुण-गान में लग गए। कहना न होगा कि इन कल-कृतियों ने ही राधा को जनता के समीप पहुँचाया। राधा के रूप-माधुर्य से समाज को सुदृष्टि मिली। धर्म-भीरु समाज को एक नया जीवन मिला। कृष्ण और राधा यहाँ के कोटि नर-नारियों के

चित्रण इतने सहज ढंग से प्राप्त होने का अवसर मिला हो। यहीं तक नहीं, राधा के अलौकिक चरित्र को दर्शाने

के लिए कलाकारों ने भक्ति-रस को भी एक प्रमुख स्थान दिया। राधा के स्वभाव की सुकुमारता और उसके चरित्र की शील सम्पन्नता ने यहाँ के प्रत्येक प्राणी को मन्त्र-मुग्ध कर लिया और ललित कलाओं में राधा, चित्रण का प्रिय विषय बन बैठी।



अभिसारिका राधा (किशन गढ़ शैली में)

सम्बल बन कर जनता के बीच छा गए। उनके जैसे नायक और नायिका का सुयोग इसके पूर्व न तो यहाँ के किसी कलाकार को और न तो समाज को ही प्राप्त हो पाया था; जहाँ शृंगार जैसे रसराज का

अलंकारता में होती है तो सम्भव है यह कथन कुछ अटपटा-सा लगे। अभिसारिका राधा का चित्र देखिए। यह चित्र किशनगढ़ की अलंकारिक-शैली में होते हुए भी अपनी भाव-प्रवीणता के लिए स्मर-

साहित्य में अलंकार की प्रधानता होने पर भाव दब जाता है और वहाँ रस-स्रोत की गति भी मन्द हो जाती है परन्तु इन चित्र-शैलियों में विशेषकर किशनगढ़ और काँगड़ा चित्र-शैलियों को देख कर यह कथन निरपवाद ही सिद्ध होता है। यदि हम ऐसा कहें कि इन चित्रों की सजीवता इनकी

शीय है। इस चित्र का रूप वैचित्र्य, रंग-विधान, भाव-सृष्टि तथा चित्र-अंकन-कौशल अन्य भारतीय शैलियों से मेल खाते हुए भी अपने में एक है। राधा का यह एक पूर्ण काल्पनिक रूप है। बदन का गेहुआँ रंग, खंजन जैसे तिरछे बाँके नयन, नागिन जैसे काले कुटिल केश हमारे बीच नवीन वातावरण उपस्थित करते हैं। एक साथ इतने प्रचलित प्रतीक राधा की श्रृंगारिक भावना को उतारने में प्रयुक्त किए गए हैं,

जिनसे चित्र की सर-सता का अनुभव दर्शक प्रथम दृष्टि में ही कर लेता है। इसके अतिरिक्त राधा की वस्त्र-सजा तथा अन्य तक्षक-भङ्गक सम्बन्धी अनेक अलंकारिक उपकरणों के होते हुए भी उसकी स्वाभाविकता में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आ पाई है। चित्रकार ने यहाँ राधा को एक आदर्श नारी के रूप में अंकित किया है। इस चित्र की श्रृंगारिकता देख कर यह कहना पड़ता है कि भारतीय चित्रों में नारी की एक श्रृंगार-सीमा हुआ करती है, जिसके

भीतर चित्रकार बड़ी भावुकता और सहृदयता के साथ नारी की लज्जा, शील और शिष्ट सम्पन्न स्वभाव को अंकित करता है। चित्र के बाह्यस्वरूप को महत्व न देकर आन्तरिक वस्तुस्थिति को सामने लाने की चेष्टा की जाती है। किशनगढ़-शैली में राधा के इस चित्र को देख कर यह धारणा और भी पुष्ट हो जाती है, जहाँ रूप वैचित्र्य के साथ भाव-सौन्दर्य हमें अलग से आकर्षित करता है।

यहाँ के चित्र और काव्य में नारी के सौन्दर्य-शृङ्गार का दिव्य स्वरूप स्थापित करने के लिए कलाकारों



राधा (कांगड़ा शैली में)

को प्रतीकों (सम्बलस) की शरण लेनी पड़ी। इन प्रतीकों ने उन कला-कृतियों में चार चौद लगा दिए। राधा के इस विशाल नेत्र के बाँकेपन में भावों का स्वरूप और रसों का भावुकतापूर्ण अंकन अत्यन्त मनोहारी हो पाया है। राधा के वाचाल नेत्र, उमकी मनोवृत्ति का एक स्पष्ट खाका खिंच जाता है। ऐसी आँखों को जब हम देखते हैं तो हमारी आँखें भी खुल जाती हैं और चित्र का रचना-रहस्य हमारे समक्ष में आने लगता है। इसी लिए राधा

का यह चित्र यथार्थता से परे हो कर अत्यन्त स्वाभाविक लगता है और अपने रूप-रंग की पूर्णता से हमारा नित्य अनुरंजन किया करता है। राधा की यह आँख, मांस, मज्जा रक्त की दुनियावी आँख नहीं है, बल्कि यह वह आँख है, जिसमें शुद्ध और सात्विक जीवन की मारभूत वस्तु सत्य की उपासना और प्रेम-वेल्लि को मिचन करने की अनंत प्रेरणाएं मिलती हैं। इसके अलावा उसके कमल-कलियों

से भरे हाथ में भी हम प्रतीकारमक अंकन का ही सौन्दर्य देखते हैं। ये कलियाँ राधा की मनःस्थिति की भाव-व्यंजना करा रही हैं। कमल प्रेम का प्रतीक माना जाता है जो कीच और जल में रह कर भी उससे सदा अलग रहता है। यहाँ पर कमल-पुष्प राधा की आत्म परिशुद्धि, भक्तिभाव अनुरक्ति और सांसारिक माया-मोह वासना से विक्ति का द्योतक है।

अब हम भारत की एक सर्वोत्कृष्ट चित्रशैली में अंकित राधा के चित्र का मूल्यांकन करेंगे। पहाड़ी-कला

अपने कोमल रेखांकन के लिए चित्र प्रसिद्ध है। राधा के इस सम्मोहक चित्र के साथ काँगड़ा-कलम का नाम जुड़ा हुआ है। काँगड़ा-शैली का कोमल आलेखन कला-जगत में अपना एक विशेष स्थान रखता है। इन कोमल रेखाओं में राधा का बाह्य रूप ही अंकित नहीं किया गया है, बल्कि उन रेखाओं की गतिमयता में राधा का स्वभाव भी बरबस उतर आया है। राधा का यह चित्र काँगड़ा चित्रशैली में व्यक्ति-चित्रों (पोर्ट्रेट पेंटिंग) की दृष्टि से भी एक ऊँचा स्थान रखता है। भारतीय व्यक्ति चित्रों में ही यह विशेषता होती है, जिनसे चित्रित व्यक्ति के स्वभाव का भी अभ्ययन किया जा सकता है। यदि भारत की समस्त चित्र-शैलियों पर दृष्टिपात किया जाए तो यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि राधा के स्वरूप की सम्यक् अभिव्यक्ति कर सकने की पूरी क्षमता काँगड़ा-शैली को ही प्राप्त है। राधा काँगड़ा चित्रकार के भाव जगत की रानी है। सुरुचिपूर्ण रंग-रेखाओं से सुसम्पन्न हो कर यह चित्र कल्पना के उच्च धरातल पर भावना-प्रधान स्वरूप का नवनिर्माण करती है।

भारतीय कला में आदिकाल से ही धार्मिक भावनाओं की प्रधानता रही है। अतः मध्यकालीन चित्रकार के लिए भी धर्म का महत्व कुछ कम न था जबकि कृष्ण और राधा की जोड़ी जनमन में घर-घर चुकी थी। यहाँ की कलाओं में राधा और कृष्ण की सामाजिकता से ओत-प्रोत अंकन भी प्रस्तुत किए गए, जहाँ धर्म को कर्तव्य के रूप में दिखाया गया और इस प्रकार से ये युगल-छवियों की आरती जन-जन के मानस में उतर गई। यहाँ के काव्य, चित्रकला और संगीत में यहीं से एक महत्वपूर्ण परिवर्तन होता दीख पड़ता है। राधा कृष्ण की सहचरी के रूप में नारी समाज की अप्रगण्य बन कर आती है। वह एक आदर्श गृहणीक समान समाज के सुख-दुःख से कंधा मिला कर चलने वाली, जीवन के आमोद-प्रमोद में रुचि रखने वाली ब्रज-वसुंधरा की मर्णा है, जिसकी शुभ्र उद्योति चर-अचर के अन्तर्गत में समाई हुई है।

काँगड़ा-कलम की राधा भारतीय चित्रलोक की वह उद्योति है, जिसके प्रकाश से हमारा अन्तःकरण जगमगा रहा है। उसकी विशाल आँखें और भोला-भाला आनन हमारे हृदय में सुख-सौंदर्य की एक नई सृष्टि करता है। इस चित्र में नारी-हृदय के सहज सौंदर्य को

चित्रित कर काँगड़ा-चित्रकार एक स्वस्थ और सुहावने वातावरण की दिव्य छटा उपस्थित करता है। स्नेह और श्रद्धा की प्रतिमूर्ति राधा का यह प्रतीकात्मक स्वरूप अत्यन्त ही सारगर्भित हो चला है। इस चित्रालेखन में कल्पना का भी योग स्तुत्य है। चित्र में कोमल रेखाओं के प्रयोग से लय और गति आ गई है। अंग प्रत्यंग में काँचन की झलक से उमका स्वरूप सँवारा गया है। रेखाओं जैसा रंगों का भी अपने ढंग का एक आकर्षण है। काँगड़ा-कलम की राधा में काँचन की कठोरता के साथ कमल की कोमलता भी वर्तमान है। राधा के दोनों हाथों में फूल हैं। वह अपने बाँए हाथ में कमल का फूल लिए है और दाँए हाथ से गेंदा का फूल संघ रही है। फूल से भरे राधा के दोनों हाथ उसके हार्दिक उल्लास को व्यक्त करते हैं। फूलों के इन लाक्षणिक आलेखनों द्वारा राधा के बाह्य और अन्तर का स्पष्टीकरण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है। राधा के इस चित्रालेखन में दार्शनिक तत्वों के सौंदर्य अलग से बिखरे दिखाई पड़ते हैं। कमल के फूलों से भरा राधा का हाथ यह इंगित करता है कि वह संसार में रहते हुए भी पानी में कमल जैसी उमसे अलग है। राधा का फूल की सुगंधि ग्रहण करना यह सूचित करता है कि उसका अन्तःकरण फूल जैसा ही प्रफुल्ल और सुवासित है परन्तु एक सामाजिक प्राणी होने के नाते उसे संसार से पूर्ण विरक्ति नहीं हो पाई है बल्कि रूप-रस-गंधयुक्त सामाजिकता के प्रति किंचित् व्यामोह भी है। काँगड़ा शैली के अतिरिक्त यह अंकन-कौशल भारत की किसी भी चित्रशैली में देखने को नहीं मिलता। राधा के लौकिक और पारलौकिक रूपों की अपूर्व कल्पना एक ही चित्र में बड़े कौशल से दिखाई गई है।

इस प्रकार से राधा के नेत्र की ओर जब हम निहारते हैं तो काँगड़ा चित्रकारों के रचना-वाचक्य की आंर भी कम आकर्षक नहीं होते। वैसे तो इस शैली में मीन नेत्र रचने की ही प्रथा रही परन्तु इस चित्र में वैसी आँखें न बनाने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि मछली प्रकृतिः चंचल होती है। अतः राधा की शालीनता अंकित करने के लिए चित्रकार मीन नयन की अपेक्षा कर एक नए अंकन-कौशल की ओर प्रवृत्त होता है। चित्र में आलिखित राधा के इस नेत्र मीन-मृग-नेत्रों की सम्मिलित छाया दीख पड़ती है और इस

नेत्र से राधा की तथा-कथित मनोवृत्तियों की सफल अभिव्यक्ति कोई सहज ही में कर सकता है। इस दृष्टि से जब हम इस चित्र पर विचार करते हैं तो एक ही स्थल पर हमें लौकिक एवं पारलौकिक दोनों ही सुखों की आत्मानुभूति होती है। कोई कला-कृति इससे अधिक ममाज का हित कर ही क्या सकती है? किशनगढ़-शैली का राधा-चित्र यदि आलेकारिक चित्रण में भारत की अन्य चित्र शैलियों का प्रतिनिधित्व करता है तो काँगड़ा शैली का राधा-चित्र अपने भावात्मक चित्रण में। इन दो चित्रशैलियों के राधा-चित्र अपने प्रतीकात्मक आलेखन-कौशल से उनके जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालने में बहुत ही सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

वी १६१, अस्सी

वाराणसी

—महेंद्रनाथ सिंह

२

टी. व्ही. चौहाण और उनकी कला

“...पहेलियों जैसी गुँथी हुई मेरी कला है, मैं मानवाकृति को अपने ढंग से खिण्डित कर इच्छित विषय का प्रतिपादन करता हूँ। संक्षेप में विषय को चित्रित करने की मेरी जो प्रणाली है, उसमें कहीं मुझे रुकना है, कहीं मुझे प्रारम्भ करना है, उसके मेरे अनियमित नियम हैं। रंग, रेखा और आकार इन्हीं के द्वारा मैं अपने चित्रों को सँवारता हूँ।”

व्यक्तिगत चित्रकला प्रदर्शनी में चित्रों के ढंग को ममभाते हुए टी. व्ही. चौहाण ने व्यक्त किया। यह चित्रकार अपने अनोखे चित्रों में मानवाकृति को विषयानुकूल बनाता है। उसमें ऐसे ही रंगों को भरता है जो विषय का प्रतिपादन करते हैं। जहाँ उसे दुःखित वातावरण को दर्शाना होता है, आँसू बहाने के दृश्य को चित्रित करता है। आँसुओं को चित्रित करता है। आँसू का सम्बन्ध आँखों से है परन्तु वह उनकी भाव-भंगिमा को व्यक्त कर आँखों को नहीं चित्रित करता। केवल आँसुओं द्वारा ही वह दुःखित वातावरण को चित्रित करता है।

चौहाण की चित्रकला पर इम्प्रेशनिस्ट स्कूल, माडर्न स्कूल और एबस्ट्रैक्ट आर्ट का प्रभाव विशेष रूप से पाया जाता है।

“ममता” अदृश्य वस्तु है, उसको वह पवित्र और महान् मानता है; ऐसी ममता केवल माता के

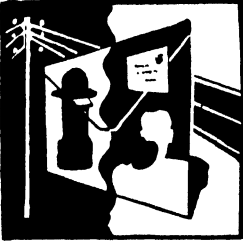
हृदय में ही होती है। उसने माता और शिशु के चित्र में इस ममता को ऐबस्ट्रैक्ट पद्धति से प्रदर्शित किया है। माता और शिशु का भौतिक अंग चित्र के पटल पर केवल रंग और रेखाओं से ही प्रदर्शित किया है।

“मछलियों का पानी में तैरना” वह इस विषय को बगाने के लिए और उस वातावरण (Effect) को प्राप्त करने के लिए, एक प्रकार के टेक्स्चर का कागज ले कर उसके प्रभाव को प्राप्त करता है कि मछलियाँ पानी में तैरती हुई दिखाई देती हैं।

‘धुन’, ‘लगन’ जैसे विषय को वह अपने ढंग से चित्र में प्रस्तुत करता है। ‘जुआरी’ गंजफा खेलते हुए हाथ में तीन पत्तों को देखता है, पर उसके मस्तिष्क में बचे हुए पत्तों का हिसाब बराबर करता रहता है। उसके मस्तिष्क की दुनिया में पत्ते ही पत्ते घूमते हैं, चक्कर लगाते हैं। उसे जुआ खेलने के लिए पत्ते, पैंती और व्ययन यही वस्तुएँ पर्याप्त हैं।

चित्रकार मनन करता है, प्रभावित होता है, और आकर्षित होता है। रास्ते पर कोड़ों से अपने आपको मारते हुए मॉगने वालों के चित्र में उनकी दीनता, दुःख और दरिद्रता को असह्य ढंग से दर्शाया गया है।

टी. व्ही. चौहाण, भारत के विभिन्न भागों की चित्रकला प्रदर्शनी में नियमित रूप से भाग लेते हैं। अनेक चित्रों के लिए उन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। आप विषय का प्रतिपादन करने से पूर्व उसके मुख्य अंगों को संवार लेते हैं। उन में चित्रों के पात्रों के वस्त्रों में तहें (Folds) बनाने की विशेषता पाई जाती है। रंगों में, आपका कोई विशेष मुख्य वर्ण नहीं है। विशेषतया भारतीय चित्रण शैली के रंगों का प्रयोग आपके चित्रों में अधिकतर पाया जाता है। ओकर, सीएना, ग्रीन, श्यामादि रेखाओं में लावण्य और गति है। आकृति के परिमाण के विषय में आप किसी प्रकार के नियमों में आबद्ध नहीं हैं। “मन्दरता केवल आँख, नाक, कान, तक ही सीमित है।” इस विचार से चित्रकार बिल्कुल सहमत नहीं है। निर्गुण, मानव शरीर, उसकी वेपथु चारों ओर का वातावरण और उसके संतुलित परिमाण में वह आकर्षण देखता है। टी. व्ही. चौहाण जलीय रंगों में अपने चित्रों को बिल्कुल सहज भाव से बनाते हैं।



हिन्दी-पत्री

देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में

(१)

['अजन्ता' के सितम्बर अंक में देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में श्री पी. ग. अज्जालकर जी का एक पत्र छपा है। उसके उत्तर में निम्न पत्र हमें प्राप्त हुए हैं—सं.]

'अजन्ता' के सितम्बर अंक में कलकत्ता के श्री अज्जालकर का देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में एक पत्र छपा है, जिसमें उन्होंने देवनागरी लिपि की अवैज्ञानिकता और कष्टमाध्य-लेखन और मुद्रण के लिए हिन्दी वालों पर तम ख़ा कर रोमन लिपि, एक नवीन राष्ट्रीय लिपि अपनाए जाने की सफ़ारिश की है। आपने हिन्दी भाषा की संविधान द्वारा प्रदत्त स्वीकृति की वैधता को स्वीकार कर लिया है पर लिपि के सम्बन्ध में हिन्दी शिक्षाशास्त्रियों तथा भाषा-वेज्ञानिकों के समस्त 'देवनागरी वर्णमाला या लिपि का नया प्रश्न उपस्थित कर दिया है' खैर, इन्होंने हिन्दी पर इतनी तो कृपा की कि उसकी वैधता को ही चुनौती नहीं दी अन्यथा आज के युग में, जब सभी को वाल्टेयर द्वारा प्रदर्शित और भारतीय संविधान द्वारा खुले रूप में प्रदत्त अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का महारा लेकर मनमाने ढंग से कुछ भी कहने का पूर्ण अधिकार है, वे राजगोपालाचार्य की भोंत स्वयं हिन्दी भाषा को ही अवैज्ञानिक एवं असंस्कृत बता सकते थे। आश्चर्य तो इस बात पर हुआ कि उन्होंने वर्णमाला को भी देवनागरी संज्ञा प्रदान कर दी वास्तव में देवनागरी वर्णमाला जैसी कोई चीज़ है नहीं, वर्णमाला तो भाषा की एक संघटक इकाई है और लिपि, उसे स्वरूप प्रदान करने वाला माध्यम। इसी लिए अ, आ आदि स्वरों तथा क, ख आदि व्यंजनों को हिन्दी वर्णमाला के नाम से ही व्यवहृत किया जाता है और हिन्दी-लिपि के लिए ही देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाता है।

देवनागरी लिपि के अन्य संशोधकों और सुधारकों

की भोंत ही, जिन्हें कि उक्त पत्र-लेखक के स्वयं बड़ी संयत और कटाक्षपूर्ण भाषा में आड़े हाथों लेने का प्रयास किया है, देवनागरी लिपि में सरलता का अभाव, संयुक्ताक्षरों की क्लिष्टता 'कलम बिना उठाए लिखने की शैली' का अभाव, टाइपिंग या मुद्रण की यांत्रिक असुविधा आदि दोषों और अभावों की चर्चा की है। एक भारतीय सामान्य लिपि की आवश्यकता पर जोर देते हुए आपने रोमन लिपि को राष्ट्रीय लिपि के रूप में अपनाने का मत्त प्रगाम्भी दिया है। अस्तु

देवनागरी लिपि के सम्बन्ध में कही गई उपरोक्त बातें जितने बार और जितने मुखों से कही गई हैं, उतनी ही बार उनका उत्तर दिया जा चुका है। अतः इन सामान्य आरोपों का विस्तार से उत्तर देना न तो अपेक्षित ही है और न समयानुकूल ही। हाँ, देवनागरी के दोष-दर्शकों को सत्तेज में निवेदन किया जा सकता है कि :

(१) सरलता और क्लिष्टता सापेक्ष प्रयोग है और अभ्यास में आने के बाद क्लिष्ट, क्लिष्ट नहीं रह जाता। चीनी-लिपि विश्व की क्लिष्टतम लिपियों में से एक है, जिसके प्रयोक्ताओं की संख्या भी कुछ कम नहीं है। किन्तु चीनियों के लिए वह उतनी क्लिष्ट नहीं रहती, जितनी कि अन्य देशों के निवासियों के लिए या अशिक्षित चीनी के लिए और देवनागरी में तो ऐसा क्लिष्टत्व दोष है भी नहीं।

(२) संयुक्ताक्षरों का सम्बन्ध लिपि से कहीं अधिक भाषा से है। यदि भाषा में संयुक्ताक्षरों का बाहुल्य होगा तो लिपि में उन्हें उतारना ही होगा; फिर चाहे वह देवनागरी लिपि हो या रोमन। क्योंकि भाषा का रूप-विधान लिपि के माध्यम से ही होता है। संयुक्ताक्षरों के लिए अब नए नियम और अपवाद बनाने की आवश्यकता नहीं है, वे अपने आप में पूर्ण हैं। लिपि का कम हिन्दी में वही होता है जो कि उच्चारण का होता है। शब्द या ध्वनि विपर्यय के लिए

हिन्दी में कोई स्थान नहीं है, चाहे अंग्रेजी और फ्रेंच आदि सुविकसित भाषाओं में वह आज के वैज्ञानिक युग में भी प्रचलित हो। दूसरे अक्षरों के लिए भी सामान्य नियम हैं। पाई वाले अक्षरों की पाई हटा कर क, झ, फ आदि की अर्द्ध पाई हटा कर तथा शेष को हलन्त करके दूसरे व्यंजनों से संयुक्त किया जा सकता है।

(३) टाइपिंग और मुद्रण की सुविधा को दूर करने के लिए ही हम अपनी लिपि बदल दें यह तो लगभग वैसा ही होगा कि उँगली में फोड़ा होने पर सारे हाथ को ही काट दें। यन्त्रों का आविष्कार, मानव-मस्तिष्क की उपज है, जो सदा अनुसंधान-प्रिय और विकास-आत्मक रहा है। मानव-मस्तिष्क के अनुकूल यन्त्रों का निर्माण करना वैज्ञानिक है और यन्त्रों की सुविधा के अनुसार मानव-मस्तिष्क ढालना पूर्णतः अवैज्ञानिक और उसके विकास का अवरोधक है और फिर आज हिन्दी के उपलब्ध टाइपराइटर्स पर भी ५०-६० शब्द प्रति मिनट टाइप करने वाले व्यक्ति मेरे परिचित हैं—जो गति रोमन के समुन्नत टाइप में भी आदर्श मानी जाती है। अतः यह कोई वैसा महत्वपूर्ण तर्क नहीं माना जा सकता।

(४) उक्त पत्र-लेखक का कथन है कि क् च् ट् प् और ग् ज् ड् द् ब् के अतिरिक्त इन्हीं के समवर्गी महाप्राण ख् ख् ट् थ् फ् और घ् भ् ड् ध् भ के लिए मिल अक्षरों की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती। वास्तव में देवनागरी लिपि की यही विशेषता है कि उसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए एक चित्ररूप का विधान किया गया है जो कि विश्व की अन्य भाषाओं में उपलब्ध नहीं है। इसी गुण के कारण विदेशी भाषावैज्ञानिकों ने भी इसे पूर्ण वैज्ञानिक एवं व्यवहार-मुलभ बताया है। क्या इन महाप्राण वर्णों को भाषा से निकाल देने पर आपकी हिन्दी, हिन्दी रह सकेगी और उनके ध्वनि-रूपों का लोप कर देने पर क्या उसी आसानी से उन्हें समझा जा सकेगा?

(५) 'हाथ, कलश, शाम, रस' आदि अकारान्त शब्दों में क्रमशः थ, श, म, और सम्पूर्ण होने पर भी उनका उच्चारण वैसा नहीं होता, उनमें स्वर होने का आभास ही नहीं मिलता। इसका कारण भाषा या लिपि की अपूर्णता नहीं है, यह तो बलाघात का परि-

णाम है जो सभी विकसशील और व्यवहृत भाषाओं में प्रचलित होता है। बलाघात भाषा के विकास के लिए एक सर्वमान्य वैज्ञानिक आधार है, इसे देवनागरी लिपि की त्रुटि नहीं कहा जा सकता।

उक्त विवेचन से इतना तो स्पष्ट है कि नवीन लिपि की आवश्यकता के लिए श्री अज्जालकर द्वारा प्रस्तुत आधार कोई विशेष मदद नहीं रखते और न लिपि-परिवर्तन के लिए ही हमें उन्माह प्रदायक हैं। अस्तु। अब जग। उनकी राष्ट्रीय लिपि का भी विवेचन कर लिया जाए। उनकी तथा कथित राष्ट्रीय लिपि का विस्तार में दिग्दर्शन न करा कर यहाँ केवल उसकी विप्र-तिपत्तियाँ ही संक्षेप में बताना अभीष्ट होगा।

१. मात्रा : देवनागरी लिपि के विरोध में एक बड़ी दलील यह दी जाती है कि उगमें ऊपर और नीचे मात्राएँ लगती हैं, अतः वह स्थान तो अधिक घेरती ही है, मुद्रण में असुविधाजनक भी है। किन्तु प्रस्तुत राष्ट्रीय लिपि में दीर्घ स्वरों के ऊपर की रेखा और ट, ठ, ड, ढ, ण के लिए प्रस्तुत t th d dh n में नीचे की बिन्दु क्या वही समस्या उत्पन्न नहीं कर देगी? इसी प्रकार म, श, ष, को भी ऽ के ऊपर नीचे चन्द्रबिन्दु लगा कर अभिव्यक्ति करने का प्रस्ताव है। क्या वह भी वर्ण के ऊपर और नीचे मात्रा के बराबर जगह नहीं घेरेगा?

२. संयुक्ताक्षर : देवनागरी लिपि में संयुक्ताक्षरों के लिखने और पढ़ने का कम विधान एक-सा ही है और वह इतना स्पष्ट है कि जो कुछ लिखा जाएगा, वही पढ़ा जा सकेगा। किन्तु प्रस्तुत राष्ट्रीय-लिपि में, जिनमें शब्द के अंतिम अकारान्त अक्षरों में आगे अकार का विधान नहीं है, पूर्ण अकार और हलन्त-व्यंजन का भेद कैसे स्पष्ट हो सकेगा। तब पट् (गिरने का शब्द) और पट (वस्त्र) दोनों में क्या अन्तर होगा? दूसरे, भाषा-विज्ञान के अनुसार संयुक्ताक्षर के साथ वाले प्रथम या अन्तिम वर्ण पर कभी-कभी अधिक बल देकर बोला-जाता है और वह बल अक्षर में सञ्जिविष्ट स्वर द्वारा रुक जाता है। यदि अकारान्त शब्द के अन्तिम दो वर्ण संयुक्त हुए तो यह बल कैसे और कौन उठाएगा जैसे लट् और लट्?

३. मुद्रण : मुद्रण की सुविधा के लिए रोमन लिपि के २६ वर्णों के स्थान पर प्रस्तुत लिपि में २४ अक्षरों का ही विधान है और (X और W) दो वर्णों

को बहिष्कृत कर दिया गया है। किन्तु प्रस्तोता महाशय यह भूल गए कि टाइपिंग करते समय प्रस्तुत नवीन लिपि में 'क' के लिए K और A दो 'की' दबानी पड़ेंगी और 'का' के लिए KA और ऊपर की (—) आड़ी रेखा के लिए तीन। जबकि देवनागरी लिपि के वर्तमान टाइप में केवल क की एक 'की' दबा देना ही पर्याप्त है। इसी प्रकार ध्यान का ध्य dhya चार चाबियों के दबाने से बनेगा, जब कि वर्तमान टाइपराइटर पर वह केवल दो ही चाबियों से बनाया जा सकता है और धनाद्य के द्य के लिए dhya और नीचे (.) बिन्दु इस प्रकार ५ 'की' दबानी होगी। यदि इस पर मात्रा और हो तो फिर तो एक अक्षर के लिए ७ या ८ तक चाबियाँ दबानी पड़ेंगी। यही स्थिति मुद्रण के विषय में है, बल्कि वहाँ तो 'स्पेस' का प्रश्न और भी गम्भीर है।

(४) 'कलम बिना उठाए लिखने की शैली' के विकासशील सिद्धान्त पर प्रस्तुत लिपि यद्यपि खरी उतरती है। पर क्या इस शैली का विकासशील सिद्धान्त सभी अच्छी लिपियों पर लागू होता है? और क्या वे सभी लिपियाँ जो बिना कलम उठाए लिखी जा सकती हैं, अच्छी मानी जाती हैं? भारत की मारवाड़ी या मुड़िया जो महाजन व्यापारियों की लिपि है, देवनागरी का विकृततम रूप है। उसमें मात्राओं का कहीं पता नहीं रहता, वर्ण की आकृति का कोई ध्यान नहीं रखा जाता और उसमें 'लाला जी अजमेर गए। बड़ी बही को भेज देना' पंक्ति को 'लालाजी आज मर गए, बड़ी बहू को भेज देना' पढ़ जाना कोई आश्चर्यजनक या असंभाव्य बात नहीं। पर यह बिना कलम उठाए लिखी जाती है क्या इसी गुण के सहारे उसे सर्वत्र व्यापक रूप से लागू कर देना खतरे से खाली न होगा।

(५) राष्ट्रीय लिपि के प्रस्तोता महाशय ने फ़ारसी के फ़ क और ज की ध्वनि के लिए तो f, q और z वर्ण ढूँढ़ निकाले किन्तु हिन्दी की प्रधान ध्वनि ज के लिए, जो सभी भारतीय भाषाओं में पर्याप्त प्रचलित है, क्या किया जाएगा। ज् को तो उन्होंने पहले ही पार कर दिया, फिर यह ज का काम्बिनेशन कैसे बिठाया जाएगा। यहाँ यह ध्यान रखने की बात है कि उच्चारण की दृष्टि से य और ज में समानता होते हुए भी मूलतः बहुत अन्तर है। तो फिर ज कैसे लिखा जाएगा। 'सॉय-सॉय'

शब्द कैसे लिखा जाएगा। नवीन लिपि में तो वह सान्य बन जाएगा।

(६) उक्त पत्र लेखक ने भाषा-शास्त्र का सर्वे करते करते एक तथ्य और खोज निकाला है कि 'उत्तर तथा दक्षिण भारत में वर्णमाला की साम्य होने पर भी लिपि भिन्नता समान रूप से पाई जाती है। उत्तर भारत की पंजाबी, हिन्दी, मराठी, गुजराती, बंगला, उडिया असमिया आदि भाषाओं की प्रकृति में साम्य होने पर भी लिपि एक न रह सकी।' यह वास्तव में नई खोज है और इसके लिए शोधकर्ता बधाई के पात्र हैं। पर साथ में निवेदन है कि यह खोज किम युग की लिपि के सम्बन्ध में है। उत्तर भारत की विभिन्न लिपियाँ आदि श्रोत एक ही है और मूलतः उनमें अधिक अन्तर भी नहीं है। मराठी में तो मूल रूप से देवनागरी लिपि का व्यवहार होता ही है, कच्छ से लेकर कलकत्ता तक की अन्य भाषाओं में भी लिपि में साम्य है। देवनागरी का 'क' ही गुजराती में 'फ' और बंगला में 'क' बन गया है। गुजराती लिपि की उपज तो अभी नई ही है और यह भी देवनागरी की अपूर्णता या अवैज्ञानिकता के कारण नहीं बल्कि अन्य कारणों से ही लागू की गई है।

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम नूतनता के मोह में कहीं अपने पुरातन, को ही न भुला बैठें, जिसके आधार पर हमारा वर्तमान खड़ा है। परिवर्तन स्वयं में बुरा नहीं है, वह तो 'सृष्टि' का प्रथम गुण है किन्तु परिवर्तन के लिए ही परिवर्तन हानिकारक हो सकता है। नाटक, लघुकथा, आलोचना, निबन्ध आदि सभी शैलियों में हमने पाश्चात्य देशों की नकल की तो इसका यह तात्पर्य नहीं कि हम अपने संपूर्ण-जीवन दर्शन को ही उस ढाँचे में ढाल लें। जो ग्रहणीय है वह लेना बुरा नहीं पर यदि अपने पास वह न हो तभी। जब अपने पास गेहूँ की रोटी है तो दूसरे की देखा-देखी हम उधार लेकर जवार की रोटी क्यों खाएँ। देश की अन्य भाषाओं को ही देवनागरी लिपि में लिखे जाने के प्रयत्न किए जा रहे हैं, यदि वे सफल हो गए तो देवनागरी की रही-सही खाभियाँ भी स्वतः दूर हो जाएँगी।

भिस्ती खाना रोड,

जयपुर

—भगवान सहाय त्रिवेदी

(२)

‘अजन्ता’ का सितम्बर-अंक पत्र हुआ। धन्य-वाद। ‘चिट्ठी-पत्री’ में श्री पी. ग. अड्यालकर की चिट्ठी को पढ़ा। अड्यालकर जी ने रोमन-लिपि की सरलता को व्यक्त किया है तथा लिखा है कि इसमें हिन्दी ही नहीं अपितु भारतीय गणतन्त्र के संविधान में सम्मिलित प्रायः सभी भाषाएँ लिखी जा सकेंगी। और भाषाओं की बात तो मैं नहीं जानता, किन्तु हिन्दी और संस्कृत भाषाएँ रोमन लिपि में निश्चय ही ठीक तरह नहीं लिखी जा सकती। इस बात को मानने से शायद ही हिन्दी और संस्कृत का कोई जानकार इनकार करे। टाइपिंग आदि की दृष्टि से रोमन-लिपि भले ही ठीक हो, परन्तु पठन-पाठन की दृष्टि से कथमपि ठीक नहीं। इस बात को सभी जानते हैं कि रोमन-लिपि में लिखी हुई हिन्दी सरलता से नहीं पढ़ी जाती। अंग्रेजी पुस्तकों में जहाँ कहीं हिन्दी का कोई शब्द या वाक्य रोमन-लिपि में लिखा रहता है, वहाँ पढ़ने वालों को कठिनाई का सामना करना पड़ता है। रोमन-लिपि में लिखी हुई हिन्दी भले ही पठनीय हो; किन्तु इसमें लिखी हुई संस्कृत कभी भी शुद्ध रूप में नहीं पढ़ी जा सकती।

“जृ-स्तम्भु-मुचु-म्लुचु-मुचु-ग्लुचु-ग्लुचु-श्वम्भश्च-अष्टाध्यायी ॥३१.५८॥”

पाणिनि के उपर्युक्त सूत्र को यदि रोमन में लिखें तो वह कैसे पढ़ा जा सकता है।

एक बात और देवनागरी को त्यागने पर हिन्दी और संस्कृत पढ़ने वालों को रोमन-लिपि और देवनागरी दोनों का ज्ञान प्राप्त करना पड़ेगा क्योंकि अधिकांश प्राचीन पुस्तकें (हस्तलिखित) देवनागरी में हैं।

संसार में अनेक लिपियाँ हैं जो नागरी से कठिन हैं; किन्तु उनके लिए तहलका नहीं मचाया जाता; फिर नागरी ही पर क्यों इतनी कृपा की जा रही है।

कठार, वीरपुर

गाजीपुर (उ. प्र.)

—भागवत पाण्डेय ‘सुधांशु’

केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हिन्दी-शिक्षा

(३)

[हम उपर्युक्त पत्र की ओर ‘अजन्ता’ के पाठकों और हिन्दी के विद्वानों का ध्यान आकर्षित करते हैं। यदि

इस सम्बन्ध में वे अपने विचार लिख कर भेजेंगे तो हम उन्हें पत्रों में प्रकाशित करेंगे—सं.]

भारत-परकार पर हिन्दी-विकास का जो उत्तर-दायित्व है, उस वह अच्छी तरह नहीं निभा रही है, यह तथ्य किसी से छिपा नहीं है। इस मन्द्य गति से चल कर वह नियत समय के अन्दर हिन्दी को अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचा सकेगी, इसमें सन्देह है। वढ़ने वाले तो कहते हैं कि हिन्दी हम पर लादी जा रही है परन्तु वास्तविकता इसके विपरीत है। सुना है, केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की ओर से अंग्रेजी के प्रशिक्षण के लिए एक संस्था खुलने जा रही है और वह भी हैदराबाद में, जहाँ हिन्दी विश्वविद्यालय और अकादमी खोलने की बात कही जाती थी परन्तु इस विषय में निश्चित रूप से कुछ ज्ञात नहीं है।

हाँ, गृह-मन्त्रालय ने इस दिशा में एक ठोस कदम अवश्य उठाया है। उसकी योजना के अनुसार भारत के ३६ मन्त्रों में लगभग १५० अध्यापक केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों को हिन्दी पढ़ा रहे हैं। पढ़ने वालों को प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ नामक तीन परीक्षाएँ क्रमशः उत्तीर्ण करनी होंगी। आन्तम परीक्षा हाईस्कूल के समकक्ष है और द्वितीय मिडिल स्कूल परीक्षा है। उनके पाठ्य-क्रम में कार्यालय-सम्बन्धी ज्ञान का भी समावेश है। इस स्कीम के अन्तर्गत हजारों कर्मचारी अध्ययन कर रहे हैं, ऐसा कहा जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि ऊपर से देखने में यह कार्यक्रम बहुत अच्छा जान पड़ता है परन्तु इसका संचालन कुशलतापूर्वक नहीं हो रहा है। व्यवहार-रूप में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं। हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य नहीं किया गया है, प्रत्युत स्वेच्छा पर आधारित है। फलतः कुछ कर्मचारी तो प्रारंभ ही नहीं करते और कुछ प्रारंभ कर बीच में ही विरत हो जाते हैं। कुछ उत्तरदायी अधिकारी इसे बोझ समझते हैं और प्रायः हिन्दी कक्षा में, अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को अध्ययन-काल में बुलाते रहते हैं। कुछ विद्यार्थियों का बीच ही में स्थानान्तरण हो जाता है। परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए उपस्थिति का नियम तो कड़ा है; परन्तु अनुपस्थित होने वालों के साथ कोई कड़ाई नहीं बरती जाती।

अध्ययन का समय अपेक्षाकृत कम है। कर्मचारी सप्ताह में केवल तीन दिन एक-एक घण्टे के लिए

पढ़ते हैं। सभी परीक्षाओं की अवधि ६ मास है। यदि नियमित रूप से व्याख्यान हों तो १०८ घण्टे हो सकते हैं किन्तु उनमें भी कभी-कभी छुट्टियाँ हो जाती हैं, जिनमें १०० से अधिक लेक्चर नहीं हो पाते।

यदि विद्यालयों में ३ घण्टे प्रतिदिन अध्यापन का समय मान लें तो उनकी सारी पढ़ाई, स्कूल की लगभग एक मास की पढ़ाई के बराबर है। ऐसी अवस्था में कोई भी सोच सकता है कि वर्षों का पाठ्यक्रम महीने में कैसे समाप्त हो सकता है? उनमें कितने ही मउज्जन ऐसे भी होते हैं, जो घर पर पुस्तक खोलना बच्चों के सामने अपना अपमान समझते हैं।

मस से बड़ी कठिनाई यह है कि पाठ्यक्रमों का निर्धारण कमिक, वैज्ञानिक और विवेकपूर्ण नहीं है। अक्षरज्ञान के पश्चात् एकदम काठन पुस्तकें प्रारम्भ कर दी जाती हैं, जिनमें 'सुखदाग' ऐसी साहित्यिक पुस्तक भी है। प्रथम पुस्तक 'मरल हिन्दी' अवश्य कुछ मरल है परन्तु उसके प्रथम पाठ 'विनती' में लिखा है : 'विनती सुन लो हे भगवान, हम सब बालक हैं नादान'। बड़े-बूढ़े आक्रमरों को नादान बालक कहना कहाँ तक उपयुक्त हो सकता है। शब्द भले ही मरल हों पर विषयों का निर्वचन और कहने का ढंग प्रौढ़ों के अनुकूल होना चाहिए। पुस्तक में अनेक अशुद्धियाँ भी हैं, जिनमें प्रारम्भ ही भ्रमपूर्ण हो जाता है। 'कुंजी' को 'कुंजी' 'डंडा' को 'डंडा' और 'ढंग' को 'ढंग' लिखा गया है। 'अच्छी' के लिए 'अच्छो' का प्रयोग हुआ है। 'ने' का प्रयोग आदि 'की भी अशुद्धियाँ हैं। मना है, यह पुस्तक बदल रही है परन्तु इसके स्थान पर चलनेवाली पुस्तक अभी छप रही है। कक्षा सितम्बर से ही प्रारम्भ कर दी गई है और तीन महीने तक पुस्तक का पता ही नहीं।

पढ़नेवालों की मातृ-भाषाएँ भिन्न-भिन्न हैं। किसी की मातृ-भाषा में वर्ग के दूसरे चौथे अक्षर नहीं हैं तो किसी की मातृ भाषा में र, ल दो-दो हैं और ए ऐ तीन-तीन हैं। अतएव वे भिन्न-भिन्न प्रकार की अशुद्धियाँ करते रहते हैं। कोई 'दान' को 'धान' लिखता है तो कोई 'घर' को 'गर'। संस्कृत के सभी शब्द हिन्दी में प्राप्य हैं, समझ कर कोई 'शिक्षा' का प्रयोग दण्ड अर्थ में करता है तो कोई संसार का प्रयोग 'परिवार' (फ़ैमिली) अर्थ में। इनके सुधार के लिए पर्याप्त समय और व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता है।

फिर भी गृह-विभाग का यह कार्य प्रशंसनीय है परन्तु आवश्यकता है, समय, सुप्रबन्ध, मनोयोग एवं दृढ़ता की। अन्यथा प्रचार के नाम पर नाम बदनाम भी होगा और कोई उपयोगी काम भी न हो पाएगा।

बनारस

—चिदानन्द शर्मा

'अजन्ता' के सम्बन्ध में

(४)

'अजन्ता' का नया अंक देख कर प्रसन्नता हुई। हैदराबाद जैसे सुदूर प्रदेश से ऐसी सुरुचिपूर्ण पत्रिका का प्रकाशन हिन्दी के लिए कम गौरव का विषय नहीं है। अधिक अभिनन्दनीय तो आप जैसे उन लाखों लोक-सेवकों का यह सम्मोहक प्रयास है, जो अपने लिए किसी फल की कामना नहीं करता, जब कि वणिक्सभ्यता के इस युग में पग-पग पर आदमी-आदमी से सौदा कर रहा है। प्रस्तुत अंक की सामग्री पठनीय है। हाँ, कविताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। लेकिन ऐसी रचनाओं से अपने पाठकों की रक्षा करें, जिन्हें पढ़ना और समझना लड़ाई में भर्ती होने के समान अप्रिय प्रतीत हो। तानिक और परिश्रम और सहयोग-प्राप्ति पर 'अजन्ता' हिन्दी की आदर्श पत्रिका बन जाएगी।

ओरलैम मलाड,

बम्बई

—परदेशी

(५)

'अजन्ता' का अक्तूबर-नवम्बर अंक मिला। धन्यवाद। रचनाएँ अच्छी हैं। श्री हरिनारायण की रचना पिष्टवेण-सी लगी। सम्पूर्ण अंक में प्रकाशचन्द्र गुप्त एवं प्रवासी की चीजें बहुत अच्छी लगीं। प्रवासी की रचना पढ़ कर फड़क उठा, इसलिए नहीं कि उसमें मेरा नाम है, बल्कि इसलिए कि उक्त रचना में नए शिल्प का दर्शन मुझे हुआ—उनकी राय से मैं भी सहमत हूँ। वे मन्त्रे अर्थ में प्रतिभाशाली साहित्यकार हैं—पर परिस्थितियाँ उन्हें तोड़ती चली जा रही हैं, पूर्णियाँ के सर्वे को उन्होंने देखा, क्योंकि वे स्वयं कानूनगो थे—इसी लिए रेणु की कमजोरी को उन्होंने बारीकरी से पकड़ा भी है। आशा है, प्रवासी जी पर्याप्त व्यस्त रहते हुए भी हिन्दी-जगत को ऐसी रचनाएँ देने में समर्थ हो सकेंगे, जिनसे उनकी समीक्षा की नई शैली

का विकास होगा। सम्पादकीय भी काफ़ी उपयोगी है।
भगवान पुस्तकालय,
भागलपुर—२

—वेचन

(६)

‘अजन्ता’ दक्षिण-भारत का प्रतिनिधित्व करने वाली हिन्दी की एक प्रमुख पत्रिका है जो लगभग नौ वर्षों से हिन्दी जगत् का उपकार कर रही है। और पत्र पत्रिकाओं की भाँति ‘अजन्ता’ का भी मेरी आँखों से बच कर निकल जाना संभव नहीं। पत्रिका में कहानी, कविता और लेखों के अतिरिक्त ‘चिट्ठी-पत्री’ और ‘सम्पादकीय स्तम्भ बड़े ही महत्व के होते हैं। मेरे हाथ में सितम्बर १९५७ की ‘अजन्ता’ है।

अमुक पत्रिका में प्रकाशित ‘शाह और शायर बहादुर शाह ‘जफ़र’ रमानाथ शर्मा ‘परिमल’ के लेख पर मुझे दो शब्द कहने हैं। शहशाह बहादुर शाह के व्यक्तित्व की सब से बड़ी विशेषता है, उसका दुहरा व्यक्तित्व जहाँ एक ओर वह कुशल शामक है, वहीं दूसरी ओर उसे कवि हृदय भी मिला है। समर्थ लेखक ने उसके इसी मन्तुलित व्यक्तित्व को उभारा है। भाषा भी प्रसंगानुकूल है। शीर्षक भी कितना मला है। विद्यावती मिश्र तो एक सफल कर्वायत्री हैं ही; उनकी कविता ‘भीवर हूँ किम तरह’ के विषय में क्या कहा जाए? सरल जी भी सिद्धहस्त लेखक हैं।

अब ‘चिट्ठी-पत्री’ के स्तम्भ पर आ जाइए। आलोचना प्रत्यालोचना का जैसा विकृत रूप आज दृष्टि-गोचर हो रहा है, वैसा संभवतः कभी न था। आलोचक को कम-से-कम यह ध्यान रखना चाहिए कि आलोचना आलोच्य वस्तु की कमी है न कि स्वयं कलाकार की। ‘निन्दास्तुति’ वाली आलोचना का जमाना आज लद चुका है। गगनाथ ‘राकेश’ की कविता ‘स्योना पृथ्वी भवानुत्तरा निवेशनी’ पर जो आलोचना एक मज्जन ने प्रस्तुत की है, वह समालोचना के स्थान पर व्यक्तिगत आक्षेप अधिक है।

अमुक पत्रिका का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अंश होता है सम्पादकीय स्तम्भ। समसामयिक समस्याओं पर विद्वान् सम्पादक अच्छा प्रकाश डालते हैं। ‘भाषा-आयोग की रिपोर्ट के पश्चात्’ हिन्दी की समस्या को लेकर दक्षिण-भारत में जो नहीं हो रहा है वही कम है। राजा जी जैसे विचारक मिथ्याप्रचार का सहारा लेते हैं

तो औरों को क्या कहा जाए? उन्हें पण्डित नेहरू पर भी विश्वास नहीं। हिन्दी-भाषा, उनके मतानुसार, दक्षिणार्णवियों पर लादी गई है। ‘हिन्दी मास्र-उद्यवाद’ (?) के विरोध में राजा जी अपनी जवान को बड़ी तकलीफ दे रहे हैं। सम्पादक महोदय ने राजा जी को जेगा मुँह तोड़ उत्तर दिया है, उन जैसे निर्भीक और निष्पक्ष समीक्षक से ऐसी ही आशा की जाती थी। सम्पादक मेरी बधाई स्वीकार करें। कुल मिला कर ‘अजन्ता’ अच्छी निकल रही है।

गुलाबभवन, छोटा बघाबा
इलाहाबाद

—राजेन्द्रबहादुर सिंह

(७)

‘अजन्ता’ के दो अंक मिल चुके हैं। वैसे जहाँ तक देख पाया, अंक काफ़ी सुन्दर है तथा ‘अजन्ता’ अपनी परम्परा का निर्वाह कर रही है।

एक बात? ‘अजन्ता’ के लेख, निबन्ध आदि जितने स्वस्थ और पठनीय होते हैं, उतनी कविताएँ नहीं।

५६।६६ ए, औगानगंज
वाराणसी

—हर्षनाथ

(८)

‘अजन्ता’ में ‘डिगल कोश’ की आलोचना पढ़ी। अच्छी की है। मैं अभी नए अपने प्रकाशित दो ग्रन्थ समालोचनार्थ भेज रहा हूँ। ‘अजन्ता’ द्वारा आप हिन्दी की अच्छी सेवा कर रहे हैं।

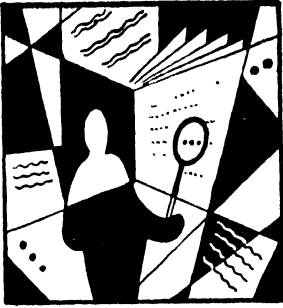
नाइटों की गवाइ,
बीकानेर

—अगरचन्द नाइट

(९)

मुझे सितम्बर ५७ ‘अजन्ता’ का अंक मिला। मुझे तो ऐसा प्रतीत हुआ कि ‘अजन्ता’ के प्रत्येक अंक साहित्यिकों के लिए अनमोल तथा अनुपम निधि है। मैं एक पत्रकार के नाते पर कहता हूँ कि आपकी पत्रिका इस समय हिन्दी-जगत् में बेजोड़ है। लेखों का चयन, कविता, चिट्ठी पत्री के स्तम्भों में उतनी अच्छी सामग्री रहती है कि उसे अध्ययन कर लोग सुगमता से हिन्दी-साहित्य के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में विशेष जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। सम्पादक महोदय पत्रिका के स्तर को सदैव ऊँचा उठाने के प्रयत्न में व्यस्त रहते हैं। पटना

—रामवरणसिंह ‘सारथी’



वीर-वीर..

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ सम्पादक 'अजन्ता' के नाम भेजी जानी चाहिए।]

उर्दू साहित्य का इतिहास

लेखक : डॉ० एजाज हुसैन

अनु : शमशेर बहादुर सिंह

प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन

दिल्ली, बम्बई, इलाहाबाद, पटना, मद्रास

मूल्य : ६.००

उर्दू-साहित्य का यह 'संक्षिप्त' इतिहास '२० वर्ष पूर्व' उर्दू में लिखा गया था और क्योंकि 'कई विश्व-विद्यालयों के हिन्दी के पाठ्य-क्रम में उर्दू-भाषा का इतिहास अनिवार्य विषय है'.. और 'नागरी लिपि में उर्दू-भाषा के बहुत कम इतिहास मिलते हैं'—इस कारण डॉ० एजाज हुसैन की उर्दू में लिखी हुई इस पुस्तक का हिन्दी में रूपान्तर किया गया है। जो पुस्तक इतिहास की हो और २० वर्ष पूर्व लिखी गई हो—उसमें आवश्यक परिवर्तन और परिवर्धन होने चाहिएँ; क्योंकि जहाँ अनुशीलन और अनुसन्धान इतिहास की रूप-रेखा को बदल डालते हैं—वहाँ अनेक नवीन लेखकों और रचनाओं में भाषा समृद्ध हो जाती है। २० वर्ष के 'इतिहास' को 'हिन्दी के विद्यार्थियों' को पढ़ाने का यह परिणाम होगा कि उन्हें न तो नए अनुसन्धानों का परिचय प्राप्त हो सकेगा और न उन्हें उर्दू-साहित्य के नवीनतम लेखकों और गातिविधियों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी प्राप्त हो सकेगी। हमें प्रस्तुत पुस्तक के द्वारा 'उर्दू-साहित्य के इतिहास' के सम्बन्ध में अनेक बातों का पता चलता है परन्तु इसमें अनेक कथन इस प्रकार के हैं, जिनके लिए उपयुक्त प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं समझी गई है और अनेक इस प्रकार के कथन हैं जो कि इधर-उधर की पुस्तकों के आधार पर लिखे गए हैं, जो अपरिपुष्ट हैं और जिनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि लेखक की धारणाएँ न तो निश्चित ही हैं और न स्पष्ट

हैं। संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश की उत्पत्ति और विकास आदि के सम्बन्ध में लेखक ने जो-कुछ लिखा है, उसे जाने दीजिए, क्योंकि इनके सम्बन्ध में उसने जो कुछ लिखा है—मरमरी तौर पर लिखा है; उनके सम्बन्ध में लेखक का ज्ञान साधारण है और उससे यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि जो कुछ भी वह लिखेगा वह पुष्ट, परिपक्व और प्रामाणिक होगा परन्तु दुःख की बात यह है कि वह उर्दू की उत्पत्ति पर भी कुछ विशेष गहरा प्रकाश नहीं डाल सका है। लेखक कहता है : 'उर्दू जवान न ब्रजभाषा से बनी, न पंजाबी से बल्कि मिली-जुली जवानों में अगर लेते हुए खड़ी बोली पर उसने अपनी बुनियाद रखी। यह जवान सब के (?) मन-चढ़ी होने की वजह से बराबर तरक्की करती रही।' उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि उर्दू जवान में कौन-सी भाषाओं का मेल हुआ ? यह 'खड़ी बोली' जिसे लेखक 'खड़ी बोली या उर्दू' भी कहता है, वह कौन-सी बोली थी। 'खड़ी बोली' का नाम किसी प्रदेश के नाम पर नहीं रखा गया है—इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि यह स्पष्ट किया जाए कि इस बोली का नाम 'खड़ी' क्यों पड़ा ? उर्दू ने 'मिली-जुली जवानों से अगर लिया है' या वह एक स्वयं 'मिली-जुली जवान' है या जहाँ तक भाषा या बोली का सम्बन्ध है, वह खड़ी बोली के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस भाषा को 'उर्दू' कब से कहा गया और क्यों इस पर पुस्तक में विशेष रूप से कुछ नहीं कहा गया है ? इस सम्बन्ध में लेखक ने एकमात्र यही लिखा है : 'उर्दू को शाहजहाँ से जुयादह करीब समझ कर 'शाहजहानी उर्दू' कहा जाता है। जिस भाषा को अमीर खुमरो के समय 'हिन्दी या 'हिन्दवी' कहा जाता था और दक्षिण में भी जिसे 'हिन्दी' के नाम से कहा गया उसे 'उर्दू' के नाम

से बाद में क्यों कहा जाने लगा ? इसके सम्बन्ध में लेखक ने अपनी पुस्तक में कुछ नहीं लिखा है । जिम जवान ने 'मिली-जुली भाषाओं का अमर लेकर' 'खड़ी बोली पर अपनी बुनियाद रखी' वह एकमात्र फारसी-लिपि में ही क्यों लिखी गई और उसने 'गज़ल', 'कसीदा', 'मर्सिया' आदि लिखने की शैली और परम्पराओं को एकमात्र ईरान के साहित्य से ही क्यों लिया—वह साहित्य में हिन्दुस्तानी बोलियों के कितना निकट आई ? इस सम्बन्ध में लेखक ने किसी प्रकार के विचार अभिव्यक्त नहीं किए हैं । 'मिली-जुली भाषा' का साहित्य क्यों 'मिला-जुला' नहीं बन सका और वह एक ओर ही क्यों अधिक झुका-इम पर यदि प्रकाश डाला जाता तो 'उर्दू' के सम्बन्ध में परम्परा से कुछ आती हुई धारणाओं के साथ ही लेखक 'हाँ' में 'हाँ' नहीं मिला सका होता ।

प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने में यह भी अनुभव होता है कि 'उर्दू' भी एक नहीं है और वह भी एक प्रकार की बोली नहीं है । पुस्तक के प्रारम्भ में लेखक ने जिम 'दखनी दौर' का जिक्र किया है, क्या वह १८ वीं सदी में ही समाप्त हो गया और या वह दौर अब भी चल रहा है ? यदि वह अब भी चल रहा है तो उसे 'वली' तक ही या १८ वीं शती तक ही कैसे समाप्त किया जा सकता है ? इस भाषा को 'दखनी' क्यों कहा गया और इसकी उच्चारण और भाषा सम्बन्धी अन्य क्या विशेषताएँ हैं इस पर भी कुछ प्रकाश नहीं डाला गया है । 'दखनी' बोली तो इस समय भी बोली जाती है और उसमें साहित्यिक रचनाएँ भी हो रही हैं । उसमें और उर्दू में समानता होते हुए भी कुछ भिन्नता है । लेखक ने मौलवी अब्दुल हक साहब का हवाला देते हुए लिखा है : "पुराने जमाने में फकिता के बाज ऐसे 'प्रकारों' का भी रिवाज था जो अब नहीं हैं, जैसे : 'गलासी', 'चार-दर' और 'चार बाज गश्त' ।" अच्छा होता कि यदि इन 'प्रकारों' को भी कुछ स्पष्ट कर दिया जाता । क्योंकि यह पुस्तक हिन्दी के विद्यार्थियों के लिए रूपान्तरित की गई है—इसलिए गज़ल, कसीदा, रुबाई, मुस्तजाद, किता, तर्जो अबन्द, ममनवी, काफ़िया, रदीफ़ और इसी प्रकार के उर्दू साहित्य में व्यवहृत होने वाले विशिष्ट शब्दों के आशय को स्पष्ट कर दिया जाता । जिम प्रकार 'उर्दू' की एक बोली 'दखनी' है, उसी प्रकार देहली और लखनऊ की बोलियों की भी अपनी विशेषता

है । उन विशेषताओं पर भी प्रकाश डाले जाने की आवश्यकता थी । लेखक ने यद्यपि इस इतिहास को अत्यन्त संक्षिप्त रूप से लिखा है परन्तु तो भी इसमें उसने अनेक उर्दू लेखकों का विवरण देने का प्रयत्न किया है । यह विवरण अधिकतर व्यक्तिगत दृष्टिकोण में ही लिखा गया प्रतीत होता है । उसमें 'उर्दू-साहित्य का इतिहास' में उनके ऐतिहासिक महत्व का आभास प्राप्त नहीं होता । पुस्तक में कुछ ऐसे शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जो हिन्दी की दृष्टि में उपयुक्त नहीं प्रतीत होते । हमें सन्देह है कि इस पुस्तक के द्वारा उर्दू-साहित्य का इतिहास के सम्बन्ध में हिन्दी के विद्यार्थियों की आवश्यकता पूरी हो सकेगी ।

राजनीति शास्त्र के मूल सिद्धान्त

लेखक योगेन्द्र मल्लिक

प्रकाशक : आत्माशाम एण्ड सन्स,
कश्मीरी गेट, दिल्ली—६

मूल्य : १०००

वर्तमान युग में राजनीति के शास्त्र को अत्यन्त अधिक महत्व प्राप्त हो गया है और इस कारण इसको गम्भीरता से अध्ययन करने की आवश्यकता बढ़ गई है । हिन्दी में अभी तक राजनीतिक सम्बन्ध में आवश्यक साहित्य बहुत कम था । प्रज्ञता का विषय है कि इस विषय पर इस ग्रन्थ को लिखने का प्रयास किया गया है । लेखक के शब्दों में "इस पुस्तक की रचना विभिन्न विश्वविद्यालयों की बी. ए. कक्षा के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं को सामने रख कर की गई है" परन्तु इसके साथ-साथ लेखक ने इस पुस्तक को एक साधारण पाठक के लिए भी उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया है । लेखक ने पुस्तक की भाषा को यद्यपि अपनी ओर से सरल रखने का प्रयत्न किया है तो भी वह विषय की गम्भीरता के कारण अनेक स्थानों पर इस प्रकार की हो गई है कि ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे अनुवाद किया गया हो । पारिभाषिक शब्दों के विषय में लेखक ने "विद्यार्थियों और अध्यापकों की सुविधा के लिए हिन्दी के शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी के शब्द दे दिए हैं और उसने सर्वसम्मत पारिभाषिक शब्दों के अभाव में एक शब्द के लिए कुछ स्थानों पर दो-एक विभिन्न शब्दों का भी प्रयोग किया है ।" अच्छा होता कि यदि पुस्तक के अन्त में इस प्रकार के शब्दों की

सूची पृथक् रूप में दे दी जानी। आशा है कि पुस्तक के अगले संस्करणों में इस बात की ओर ध्यान दिया जाएगा। इस प्रकार की पुस्तकों में एक ही स्थान पर यदि समस्त शब्दकोश प्रकाशित कर दिया जाए तो उसमें पारिभाषिक शब्दकोशों को बनाने में भी सहायता प्राप्त हो सकेगी। लेखक ने अंग्रेजी पारिभाषिक शब्दों के लिए हिन्दी में कुछ ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो कि अन्य अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण उपयुक्त नहीं होते। उदाहरण के लिए Association शब्द के लिए 'समुदाय', Exactness के लिए 'निश्चयात्मकता', Sovereign power के लिए 'सर्वोभूतमत्ता', Finance के लिए 'राजस्व', Master science के लिए 'सर्वप्रमुख विज्ञान', Environment के लिए 'आवेष्टन', Attachment के लिए 'माज्ज्य', up-to-date के लिए 'आधुनिकतम', Corporation के लिए 'संस्थान', Contract के लिए 'अनुबन्ध', Anthropology के लिए 'मानव शरीर रचना विज्ञान', Exclusive के लिए 'निषेधात्मक', Tribe के लिए 'जाति' और इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। Nationality शब्द के विषय में लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक में लिखा है : "Nationality" शब्द का हिन्दी में कोई उपयुक्त समानार्थक शब्द नहीं। इसका अनुवाद 'राष्ट्रीयता' किया गया है जो कि ठीक नहीं जैचता, क्योंकि 'राष्ट्रीयता' शब्द हमारे यहाँ एक विशेष अर्थ रखता है। "Nationality" शब्द के लिए हम 'उपराष्ट्र' या 'राष्ट्रीय इकाई' शब्द का प्रयोग अधिक सुविधा-जनक समझते हैं।" लेखक ने अपनी पुस्तक में Nationality शब्द के लिए 'राष्ट्रीय इकाई' शब्द का प्रयोग किया है। कई स्थानों पर लेखक ने अंग्रेजी शब्दों को ही लिख दिया है—उनके लिए हिन्दी के शब्दों को नहीं दिया है।

राजनीतिशास्त्र का भारतवर्ष में किस प्रकार विकास हुआ, इसके सम्बन्ध में प्रस्तुत पुस्तक में लेखक ने लिखा है : "पूर्व के लोगों ने राज्य और उससे सम्बन्धित समस्याओं पर पाश्चात्यों से बहुत पहले ही विचार प्रारम्भ कर दिया था परन्तु उसकी विचारधारा का विकास एक विशुद्ध और पूर्णतः विकासक राजनीतिक विज्ञान के रूप में न हो सका।...चीन और भारत में राजनीतिक विचारधाराएँ धर्मशास्त्र, अन्धविश्वास और पुराण

(Mythology) से स्वतन्त्र न हो सकीं। धार्मिक नेता ही राजनीतिक नेता थे।...चाणक्य, शुक, और मनु इत्यादि ने भी राज्य-विधि और राज्य-शासन के संगठन का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया परन्तु उनके विचार राज्य शासन की कला (State craft) का ही विवेचन करते हैं; किसी स्वतन्त्र राजनीतिक विचारधारा का नहीं।" ...लेखक का यह कथन ठीक नहीं प्रतीत होता कि : 'धार्मिक नेता ही राजनीतिक नेता' थे क्योंकि चाणक्य और कई अन्य राज्यपुरुष धार्मिक नेता नहीं थे। 'आन्वी-त्तिकी, त्रयी वार्ता, दण्डनीतिश्च शाश्वती' में 'दण्डनीति' में 'राज्यतन्त्र' को नहीं अपितु 'राजनीतिशास्त्र' को कहा गया है। 'महाभारत', 'रघुवंश', 'किरातार्जुनीय', 'शिशु-पाल बध' आदि काव्यों को पढ़ने में यह स्पष्टतया ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में 'राजनीति' का एक शास्त्र के रूप में पर्याप्त विकास हो चुका था। लेखक ने अपनी पुस्तक को पश्चिम के राजनीतिशास्त्र के आधार पर लिखा है परन्तु इसके लिए उसे पूर्व या भारतवर्ष के राजनीति-शास्त्र के सम्बन्ध में इस प्रकार लिखने की आवश्यकता नहीं थी। यदि लेखक ने भारतीय राजनीतिशास्त्र की पुस्तकों का कुछ अध्ययन दिया होता तो उन्हें राजनीति के बहुत-से पारिभाषिक शब्द उन्हीं पुस्तकों से प्राप्त हो जाते।

लेखक ने प्रस्तुत पुस्तक को परिश्रमपूर्वक लिखा है और हिन्दी में एक अभाव की पूर्ति की है, जिसके लिए लेखक और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं। लेखक ने राजनीति के क्षेत्र के नवीनतम बातों और विचारों को इस पुस्तक में सम्मिलित कर पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी बना दिया है। पुस्तक के प्रत्येक अध्याय के अन्त में विद्यार्थियों के लिए आवश्यक प्रश्नावली (Important questions) दी गई है। यद्यपि प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में है परन्तु प्रश्नावली अंग्रेजी में है। प्रत्येक प्रश्न के साथ यूनिवर्सिटी का नाम और मन् दिया गया है। विद्यार्थियों की दृष्टि से इस प्रकार की प्रश्नावली का दिया जाना, उपयोगी हो सकता है परन्तु पुस्तक की गम्भीरता को देखते हुए इसमें इस प्रकार की प्रश्नावली को जोड़ना कुछ उचित नहीं प्रतीत होता।

धुएँ की लकीरें

लेखक : लक्ष्मीकान्त वर्मा

विपिनकुमार अप्रवाल

प्रकाशक : रामप्रसाद एण्ड सन्स

१४, बैंक रोड, प्रयाग—२

मूल्य : १.२५

प्रस्तुत पुस्तक में लक्ष्मीकान्त वर्मा और विपिन-कुमार अप्रवाल की कविताएँ संगृहीत की गई हैं। कविताएँ आधुनिक ढंग की हैं। पुस्तक में रेखाओं में अंकित कुछ चित्र दिए गए हैं। पता नहीं इन रेखा-चित्रों के द्वारा लेखक का या उनकी कविताओं का परिचय दिया गया है। इन रेखा-चित्रों को श्रीयुत विपिनकुमार अप्रवाल ने बनाया है। कविताओं में इस बात को अभिव्यक्त किया गया है कि “प्रकाश के द्वारा वह बात नहीं कही जा सकती जो कि छाया के द्वारा कही जा सकती है।” इसलिए सम्भवतः उन्होंने अपनी इस कविता-संग्रह की पुस्तक का नाम ‘धुएँ की लकीरें’ रखा है। श्रीयुत विपिनकुमार अप्रवाल अपनी एक कविता में कहते हैं :

“हम मानते हैं
बजाय रोशनी के
छाया से
जो बात कह ले
उसकी पहुँच ज़्यादा है !”

इसी बात को वे एक अन्य कविता में इस प्रकार कहते हैं :

“प्रकाश के बिना
अन्धकार रह सकता है
पर इस अन्धकार के बिना
क्या किसी ने प्रकाश देखा है ?
इसी से
पेड़ की छाया का
सड़क के लैम्प की रोशनी से
ज़्यादा प्रभाव पड़ता है
.....
सच मानो
यह सब प्रकाश
रूप की मरीचिका-सा
ज़रूरत से ज़्यादा है”

‘बादशाह’ कविता में निम्न पंक्तियों में उनकी अपनी ही सूझ है :

“बादशाह बनाने का विचार सब से पहले
किसी बीमार को ही आया होगा”

ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न पंक्तियों में वे अपना परिचय निम्न प्रकार दे रहे हैं :

“मैं हूँ जैसे—
चौराहे के किनारे
पेड़ के तने से
उदासीन वैज्ञानिक-सा
लेटर बक्स लटका”

श्रीयुत लक्ष्मीकान्त वर्मा ने संभवतः इन कविताओं की विशेषता के सम्बन्ध में निम्न पंक्तियों में कहा है :

“हटाओ इन्हें क्या पदों
अनबनी कब तक गदों
बे-बसी
.....
एक कार्टून बनाएँ
मक्खियों को जाली से बाहर कर दें
रोशनी को टोकरी में भर कर
अंधेरे के सिर पर डाल दें
.....
चलो मजाक करें
अपने से
उस रोशनी से
उस अंधेरे से
.....”

‘ताजमहल’ कविता में ताजमहल को ‘दधि-सा कोमल धवल’ कहा गया है। इससे निम्न पंक्तियों की याद हो आती है :

“अस्थिवद्धिवच्चैव, बकवच्छ्वखवत्तथा,
राजन् ! तव यशो भाति पुनः सन्यासिदन्तवत्”

४५१, हिमायत नगर,

हैदराबाद—७

—वंशीधर विशालङ्कार

नाना फडनवीस (ऐतिहासिक उपन्यास)

लेखक : उमाशंकर

प्रकाशक : विश्वामंदिर, चौक, कानपुर

मूल्य : ४.००

ऐतिहासिक उपन्यास में तीन तत्वों की प्रमुखता पाई जाती है—इतिहास, कल्पना और रोमांस। इन्हीं

तीनों की अमम्यक् योजना कमी इसे शुद्ध रोमांस, कभी काल्पनिक-ऐतिहासिक और कभी घटनात्मक-गल्प बना देती है। देश और काल के उचित चित्रण से और विशेष कर देश के अतीत युग में जाकर उममें कियाशील हो जाने से ऐतिहासिक उपन्यास कला और कथावस्तु, दोनों की दृष्टि से प्रौढ़ होते जाते हैं। यदि ऐतिहासिक उपन्यास में कल्पना का अभाव होगा तो वह घटनाचक्र का खोलने वाली नीरस इतिहास-कथा हो जाएगी, जिसमें चरित्रों की मशकूत सृष्टि और वातावरण की उपस्थिति का औपन्यासिक अभाव होगा और यदि उसमें कल्पना की ही प्रचुरता रहेगी तो वह या तो शुद्ध रोमांस हो जाएगा या ऐतिहासिक पात्रों अथवा अतीत के वातावरण की आड़ लेकर चलने वाली गल्प। अतः सन्तुलन ही ऐतिहासिक उपन्यास को कल्पित 'शुद्ध' व विशेषण से हटा कर 'जीव' और 'यथार्थवादी' बनाता है। इतिहास, कल्पना और रोमांस—इन तीनों नवों का उचित समाहार ही एक श्रेष्ठ ऐतिहासिक उपन्यास को अमरता का धरातल देता है। ये ही तीनों तत्व चरित्रों की सृष्टि, घटनाओं के गुंफन, कथोपकथन की सर्जीवता में भी वृद्धि करते हैं।

उदीयमान उपन्यासकार श्री उमाशंकर के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'नाना फड़नवीस' में हमें एक यथा-तथ्यवादी जागरूक लेखक के दर्शन होते हैं। नाना फड़नवीस मराठा-माम्राज्य के अत्यन्त संघर्ष-शील युग में हुए थे। सरदारों की पारस्परिक लड़ाइयों, ईर्ष्या, द्वेष पेशवाई के बदलने पर साम्राज्य में अव्यवस्था और षड्यन्त्र, अंग्रेजों का मराठों के निजी मामलों में अनाश-कारी हस्तक्षेप और पूना की सुदृढ़ व्यवस्थाएँ—उस काल के इतिहास में ये ही विशेष बातें थीं। इतिहास इतनी तेजी से गतिशील था कि सुदृढ़ता की कामना ही व्यर्थ थी। भारत के भाग्य का निर्णय करने वाले कुछ केन्द्र थे—कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, श्रीरंगपट्टम्, दिल्ली, ग्वालिअर और पूना। विशाल मराठा-माम्राज्य के मस्तिष्क के रूप में नाना और शक्ति के रूप में महादजी सिंधिया प्रतिष्ठित थे। तत्कालीन अंग्रेज शासक नाना की दूरदर्शिता शासन-योग्यता और बुद्धिमत्ता के कायल थे। इस युग का इतिहास संपूर्ण और सुस्पष्ट-सा है। उपर्युक्त उपन्यास की विशेषता इस बात में है कि इन सभी दशाओं की मन्ची तस्वीर ऐतिहासिक प्रामाणिकता

के साथ प्रस्तुत की गई है। कृति की नव्ये प्रतिशत घटनाएँ और पात्र इतिहास के हैं और उनका चरित्र भी लगभग ऐतिहासिक ही रहा है। प्रत्येक घटना को बिलकुल सही रूप में, गहरी खान-खीन के बाद पेश करने के लिए और उपन्यास के सभी रोचक तत्वों को पेश करने के लिए लेखक धन्यवाद का पात्र है।

कल्पना का पर्याप्त अभाव इस कृति के चरित्रों की ऐतिहासिकता को तथा घटनाचक्र को तो अलुवरण रखता है किन्तु पात्रों के चरित्र को उभार कर सजीव रखने में उतना समर्थ नहीं होता, जितना कि उसे होना चाहिए था। पात्र घटनाओं द्वारा संचालित होने लगते हैं न कि घटनाओं द्वारा उभरते चरित्र। दूसरे, कल्पना को सहज अपावन मान कर लेखक मनोदशाओं और द्वन्द्वों को चित्रित करने का कम अवसर पा सका है। तीसरे प्राकृतिक चित्रों तथा वातावरण सृष्टि का अभाव-भा है। हम रोमांस और यथार्थवादी मांगा तथा आधुनिक उपन्यासों में चाहे वे हेमिंग्वे, ज्वायस, दोस्ताएव्स्की, काफ़का फ्रांज़िस किसी के भी हो—इस वातावरण के चमत्कारों को जानते हैं।

उपन्यास की भाषा की सरलता और प्रेक्षणीयता, विचारों की सफाई इलाध्य है। किन्तु लेखक की इस भाषा में भाषा के अनुसार भाव ढल गये हैं, जब कि भावों के अनुसार भाषा ढलनी चाहिए थी। लक्ष्मी-नाना के संवाद, नाना-यशोदा के संवाद, इसके उदाहरण हैं। लेखक घटनाओं में इतना उलझ गया है कि वह अनेक मार्मिक स्थलों को जहाँ कल्पना, मानवता की श्रेष्ठ निधियों का उद्घाटन कर सकती थीं—आँक नहीं पाया है। नाना द्वारा यशोदा का पूर्णतः भुलाया जाना, रघुनाथराव द्वारा अपने भतीजे की हत्या, रामशास्त्री की निर्भीकता, गंगाबाई की शिशु-रक्षा, महादजी शिन्दे और नाना की पुनः मैत्री इत्यादि स्थलों को लेखक की व्यस्त लेखनी छोड़ गई। उपन्यास का अंत भाषा की क्षमता का श्रेष्ठ परिचायक है।

कथोपकथन अस्वाभाविक नहीं है। केवल प्रेम-प्रसंगों की दार्शनिकता को छोड़ कर ये कथोपकथन समुचित रीति से विभाजित हैं और लेखक की शिल्प-क्षमता का परिचय देते हैं। इन कथोपकथनों में एक कमी यह है कि लेखक इनका उपयोग चरित्रों के उद्घाटन के लिए कम करता है। अनेक बार यही खटकता है कि जब चरित्र का कोई नया मोड़ आने वाला होता है तो

लेखक इतिहास के प्रमाणों द्वारा चरित्र-वर्णन कर देता है न कि कथोपकथनों द्वारा। परिच्छेदों का (क, ख, ग) नामक उपखण्डों में विभाजन आवश्यक-सा है और कई प्रसंगों में तो अस्वाभाविक विरोध भी है। उदाहरण के लिए मोलहवें परिच्छेद में विजयादशी से भरे दरबार में न्यायाधीश रामशास्त्री नए पेशवा रघुनाथ राव पर हत्यारे होने का अभियोग लगा कर अपने माहसी चरित्र तथा न्याय-दृढ़ता का परिचय देते हैं तो इसी परिच्छेद में लेखक नाना और लक्ष्मी के प्रेमालाप का वर्णन कर देता है। यह शिल्प और प्रभावान्विता दोनों की कमजोरी है।

वातावरण और चित्रण की दृष्टि में मराठों की छापामार सेना लड़ाई के चित्रण (पृष्ठ २०८-२०९ और पृष्ठ २८५, अद्वितीय हैं और कृति के महत्वपूर्ण अंग हैं। इसी प्रकार षड्यन्त्रों का वातावरण तुलया, सलोनी, सुमेरमिह, मोरोबा, मास्टिन आदि के प्रसंग खूब उभरे हैं। ये ऐतिहासिक मृत्यु भी हैं और रोमांचक भी हैं। कल्पना के अभाव में लेखक ने रोमांस का भी हल्का रंग दिया है जो अखिली द्वारा रेंगा जाता है। वही भारतीय रोमांस एक वैरागी की कुटी, एक कुमारी नवयुवती और एक भूला-भटका पथिक। युवती अलदह, भोली और कर्तव्यपरायण तथा पथिक गम्भीर चित्तक और आदर्शवादी !! चित्र-परिचित भारतीय मानदण्ड।

पात्र दो प्रकार के हैं—ऐतिहासिक और काल्पनिक। नब्बे प्रतिशत पात्र ऐतिहासिक हैं। हरीपन्त, बापू, मोरोबा, नाना, बाजीराव, गंगाबाई, रघुनाथराव, मास्टिन, तुलया जी, महादजी शिंदे, ल्यूबिन, टीपू, हैदरअली आदि सभी विशिष्ट ऐतिहासिक पात्र हैं। लक्ष्मीबाई, गशोदा, गंगाबाई को छोड़ कर अन्य स्त्रियाँ काल्पनिक पात्र हैं। लेखक का प्रत्येक नारी-पात्र उच्च कोटि का दार्शनिक है, मानवी नहीं। यह एक कमजोरी है जो किसी भी नारी-पात्र को उभारने में अक्षम रही। इसके अलावा मरल प्रेमालापों के अवसर पर लेखक आयु और चारित्रिक विशेषता का ध्यान न देकर लुका-छिपी गुदगुदी वाला प्रेम ही दिखा पाता है जो स्वच्छन्द रोमांस-मा लगता है; पर गहरी अनुभूति नहीं। नाना का चरित्र उपन्यास पर छाया हुआ है। लगभग सभी घटनाओं में, नाना की दूर-दर्शिता, देश और पेशवा की सेवा करने की निस्वार्थ

भक्ति एवं स्वभाव की मानवीय उदारता का परिचय होता है। त्याग और कर्तव्य, वैराग्य और कर्मक्षेत्र, प्रेम और दर्शन इन्हीं तीन द्वंद्वों में नाना उभरते हैं। और एक कुशल संगठनकर्ता और मराठा-साम्राज्य के संग्रहक तथा दूरदर्शी के रूप में आते हैं। नाना की धार्मिकता और वैराग्य मूलकता उन्हें दार्शनिक बनाती हैं लेकिन पेशवा के नमक की बफादारी उन्हें मराठों की शक्ति को संगठित करने वाला, देश को विदेशी शासन से मुक्त कराने वाले सेनानी के रूप में प्रस्तुत करती है। किन्तु नाना के चरित्र की ये बातें अधिकतर औपन्यासिक नाना के चरित्र को खड़ा करके नहीं किन्तु कीर्ति द्वारा पुष्ट करके, की गई है।

महादजी शिंदे, एक शक्तिशाली योद्धा के रूप में आता है जो मराठा साम्राज्य की ढाल है। किन्तु बाद में अपने साम्राज्य बढ़ाने की ईर्ष्या उसे भ्रष्ट कर देती है। नाना के लगभग सभी वीर अनुष्ठानों में हरीपन्त और महादजी शिंदे साथ रहे हैं।

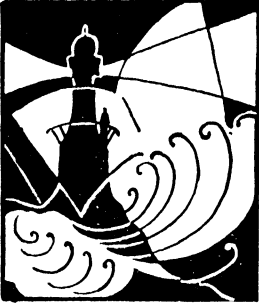
सवाई माधवराव का संक्षिप्त चरित्र बहुत ही महान् उतरा है। उन्होंने नाना और शिंदे के बीच के मन-मुटाव की स्थिति को रोक कर मित्रता लाने में जो मार्मिक प्रयास किया है, वह उसकी दूरदर्शिता और उदारता का परिचायक है। (पृष्ठ २७२) वह नाना को पिता समान मानता रहा, वह एक सफल मनानी था, उसमें अच्छे गुण थे। लेकिन अचानक मृत्यु ने यह चरित्र लुप्त हो जाता है। दूसरा चरित्र न्यायाधीश रामशास्त्री का है, जो न्याय की सच्चाई का प्रतीक-स्वरूप मुड़ह है।

अंग्रेजों में मास्टिन का कूटनीतिपूर्ण चरित्र कुशलता पूर्वक उभारा गया है।

अन्त में यही कहना पड़ेगा कि सामान्त युग के षड्यन्त्रों, सरदारों के विद्रोहों की भौकियों, अंग्रेजों की दगाबाजियों, महलों की कतिपय पेशाई केन्द्र पूना की हलचलों के चित्रण में यह उपन्यास यथातथ्यवादी रहा है। कथावस्तु में रोचकता है और ऐतिहासिक प्रामाणिकता भी। यदि कल्पना और चरित्र-निर्माण की ओर और ध्यान दिया जाता तो सोने में सुहागा मिल जाता।

द्वारा श्रीयुत लक्ष्मीशंकर शर्मा,
शान्ति कुटीर, जवाहर टोला,
आरा (बिहार)

—कुन्तल मेघ



सामयिक

॥

कोणार्क का मन्दिर: उड़ीसा के महान् वैभव का प्रतीक दिल्ली से प्रकाशित होने वाले अंग्रेजी के मासिक पत्र 'कैरवान' में उड़ीसा के महान् वैभव के प्रतीक 'कोणार्क' पर श्रीयुत कृष्णचन्द्र नायक का एक लेख प्रकाशित हुआ है। इस लेख में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

'कोणार्क का मन्दिर सूर्य का मन्दिर है। भारतीय कलाकारों की यह एक महान् और अमर कला-कृति है। जिस स्थान पर यह मन्दिर अवस्थित है, वह स्थान सभ्य संसार से बहुत दूर है। इसके चारों ओर रेत ही रेत है। मनुष्य का तो कहना ही क्या—वहाँ कोई पेड़-पत्ता तक दृष्टिगोचर नहीं होता। यह मन्दिर एकान्त में उपेक्षित-सा बंगाल की खाड़ी के समुद्र के किनारे पर उड़ीसा के अतीत गौरव को प्रदर्शित करता हुआ खड़ा है। यात्री यहाँ आते हैं और मन्दिर की कला-कृति को देख कर मन्त्र-मुग्ध-से रह जाते हैं। क्या कारण है कि ऐसी महान् और भव्य कला-कृति का ऐसे एकान्त स्थान में निर्माण किया गया है।

सूर्य चराचर सृष्टि का आत्मा है। 'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च', यदि सूर्य न हो तो पृथ्वी पर से ममस्त प्रकार के जीवन का लोप हो जाएगा। इस कारण सूर्य भगवान् की पूजा और उपामना के लिए उड़ीसा के एक राजा नरसिंह देव ने उड़ीसा में सूर्य का एक विशाल मन्दिर बनाने का निर्णय किया। पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण ने अपने दुष्ट पुत्र साम्ब को यह शाप दिया था कि उसे कोढ़ हो जाए। कहने हैं कि जिस स्थान पर यह मन्दिर अवस्थित है, उसी स्थान पर रह कर उसने सूर्य की पूजा और स्तुति की थी, जिसके परिणामस्वरूप वह कोढ़ की वीमारी से मुक्त हो गया था। इसी लिए राजा नरसिंह देव ने मन्दिर को बनाने के लिए इसी स्थान को चुना।

उन दिनों आज की तरह उड़ीसा भारतवर्ष का एक दीन-हीन प्रदेश नहीं था। यह एक समृद्धिशाली राज्य था, जिसकी सीमाएँ गंगा नदी से गोदावरी नदी तक विस्तृत थीं। उस समय उड़ीसा में एक नदी बहती थी, जिसका नाम चन्द्रभागा था। इस समय तो उस नदी का नामो-निशान भी अवशिष्ट नहीं रहा है। कोणार्क के मन्दिर के पास ही यह नदी बहती थी। इस नदी के द्वारा राज्य में व्यापार की बड़ी उन्नति हुई थी। प्रतीत होता है कि उस समय उड़ीसा का यह भाग पूरी तरह आबाद और समृद्ध था। अकबर के दरबार के महान् इतिहासकार अबुल फजल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'आईन-ए-अकबरी' में लिखा है कि उस समय कोणार्क एक समृद्धिशाली नगर था। जिस समय कोणार्क में इस महान् मन्दिर का निर्माण किया गया था—उस समय यह स्थान उजाड़ और निवासहीन नहीं था।

यह मन्दिर १२७८ के साल में नरसिंह देव के राज्य-काल में बनाया गया था। मन्दिर को चन्द्र-भागा नदी के मुहाने के निकट पञ्चतोल के गहरे पानी पर बनाने का निश्चय किया गया था। गहरे पानी में भी प्रवाह इतना तेज था कि जो भी पत्थर डाले जाते थे, वह जाते थे—इसलिए नींव का डालना कठिन था। बड़ी कठिनाई से नींव पड़ी और मन्दिर के निर्माण का कार्य प्रारम्भ हुआ।

ममस्त उड़ीसा-प्रदेश से १२,०० कुशल मूर्तिकारों को इस मन्दिर के निर्माण के लिए चुना गया। इन कुशल कारीगरों ने मन्दिर के निर्माण के लिए प्रतिदिन नियमपूर्वक परिश्रम किया और १६ वर्ष के पश्चात् इस मन्दिर का निर्माण पूर्ण हुआ। इन १६ वर्षों की लम्बी अवधि में एक भी मूर्तिकार अपने घर नहीं गया। प्रातः काल से सायंकाल तक उनका कार्य पत्थर पर हथौड़े से छेनी चलाना था। प्रत्येक कलाकार अपने हृदय की भावनाओं को पत्थर में मूर्तिमान करने में लगा हुआ

था। १६ वर्ष तक यह समस्त वातावरण छेनियों और हथौड़ों की आवाजों से गूँजता रहा। इस मन्दिर के निर्माण में २३ करोड़ रुपयों का व्यय हुआ।

अन्त में कार्य समाप्त हुआ। मन्दिर के निर्माण के सम्बन्ध में एक दन्तकथा प्रचलित है। कहते हैं कि एक मूर्तिकार का एक पुत्र था, जिसका नाम धर्मपाद था। इसकी आयु १२ वर्ष की थी। १२,०० मूर्तिकार १६ वर्ष कार्य करते हुए थक गए थे और इसलिए वे इसे पूर्णता या समाप्ति का स्पर्श नहीं प्रदान कर सकते थे। इस मन्दिर की कला को पूर्णता का स्पर्श इस १२ वर्ष के बालक ने प्रदान किया। कहते हैं कि उस बालक ने अपना कार्य पूर्ण कर मन्दिर की छत से नीचे नदी में कूद कर आत्म-हत्या कर ली। उसने अपनी आत्म-हत्या इसलिए की थी कि राजा को यह ज्ञात न हो कि इस मन्दिर को किमने पूर्णता प्रदान की। यह बात पीछे से ज्ञात हुई।

मन्दिर का देवता सूर्य है। मूर्तिकारों ने यह कल्पना की है कि मन्दिर सूर्य का रथ है; इस रथ को ७ घोड़े चला रहे हैं। कहा जाता है कि प्रत्येक घोड़ा एक रंग का प्रतिनिधित्व करता है—इसी कारण सात रंगों के सात घोड़े हैं। इस रथ के २४ पहिए बनाए गए थे। मन्दिर में अनेक प्रकार के चित्र हैं, जिनमें मानव-जीवन को भिन्न-भिन्न रूपों में प्रस्तुत किया गया है। कहीं राज-दरबार है; कहीं सैनिकों की यात्रा है; कहीं सेनाओं का युद्ध है; कहीं गुरु अपने शिष्यों को पढ़ा रहे हैं; कहीं योगी योग-साधना कर रहे हैं; कहीं भक्त पूजा कर रहे हैं; कहीं कोई प्रेमी अपनी प्रेमिका से एकान्त स्थान में मिल रहा है और कहीं मानव-जीवन को प्रदर्शित करने-वाले अन्य प्रकार के चित्र हैं। इसके सिवाय मन्दिर में कुछ इस प्रकार की अश्लील मूर्तियाँ भी हैं जो इस पवित्र देवस्थान के लिए उपयुक्त नहीं प्रतीत होतीं। सम्भवतः कलाकार मानव-जीवन के प्रत्येक पहलू को अपनी कला में मूर्तिमान् करना चाहते थे और जीवन का कोई पहलू भी अश्लील या अपवित्र नहीं था और उनके लिए सबका महत्व एक समान था।

ऊपर मन्दिर के चारों ओर अम्सराओं की पूर्ण-कार मूर्तियाँ हैं। ये मूर्तियाँ प्रत्येक दृष्टि से इतनी सुन्दर हैं कि, उनसे ज्ञात होता है कि हमारे देश में मूर्तिकला का कितना विकास हो गया था। इन अम्सराओं के

अतिरिक्त 'रामायण' और 'महाभारत' से भी कुछ मूर्तियाँ और चित्र बनाए गए हैं।

मन्दिर का द्वार-भवन यहाँ की मूर्तिकला की श्रेष्ठता और महानता को प्रदर्शित करता है। इसे देख कर आश्चर्य होता है कि क्या मनुष्य का हाथ ऐसी अमर-कला का निर्माण कर सकता है। उड़ीसा की स्थापत्य-कला का यह श्रेष्ठतम नमूना है। एक बड़ा टुकड़ा इसमें से गिर गया था। इसका आकार मूलतः २०"×३" ६"×४" ६" था और इसका वजन कुल ७५० मन था। पता नहीं यह कैसे गिर पड़ा। अनेक वर्षों तक यह टुकड़ा जमीन पर पड़ा रहा। इंजिनियरों को बुलाया गया और कहा गया कि वे इसे कलकत्ता के संप्रहालय में ले जाएँ। वे इसे सुगमता से ले जा सकते थे, क्योंकि समुद्र का तट वहाँ से केवल २ मील है। बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् भी वे इसे केवल १०० गज तक ही ले जा सके। इसके बाद उसके कुछ भाग को ही ले जाने का प्रयत्न किया गया जो कि इस ब्लॉक का एक तिहाई हिस्सा था परन्तु वे अपने इस प्रयास में भी सफल नहीं हुए और अन्त में उसे वहीं पुरातत्व-विभाग के एक कमरे में रख दिया गया।

इस मन्दिर के डोम बहुत भारी हैं। ये भूमि से ३०० फुट ऊँचे हैं। कहते हैं कि ये भी एक ही पत्थर से बनाए गए थे। इनकी ऊँचाई २५ फुट और इनका वजन ५६ मन था।

सूर्य-स्तम्भ, पुरी में जगन्नाथ-मन्दिर के सिंह-द्वार के सम्मुख अवस्थित है। मूलतः यह सूर्य के मन्दिर के सम्मुख था। कहते हैं कि जब सूर्य का उदय होता था तो सूर्य की पहली किरण इसी स्तम्भ पर पड़ती थी। मराठों के समय इस स्तम्भ को पुरी में लाया गया। यह स्तम्भ भी एक ही पत्थर का बना हुआ है और इसकी ऊँचाई ३४ फुट थी।

मन्दिर के २५ मील के घेरे में कहीं पत्थरों की शिलाएँ नहीं हैं। इसमें एक पत्थर लगाया गया है जो कि नीलगिरि के पहाड़ों में बालासोर के जिले में ही प्राप्त होता है। इस विज्ञान के युग में जब कि उस पत्थर के एक टुकड़े को एकमात्र १०० गज तक ही बड़ी कठिनाई के साथ ले जाया जा सका—वे लोग किस प्रकार इतनी दूर तक लाए होंगे—यह एक महान् आश्चर्य का विषय है। ७०० वर्ष पूर्व यह किस प्रकार सम्भव हो सका

होगा—यह एक चमत्कार-सा प्रतीत होता है।

अब कोणार्क का वह प्राचीन वैभव अभिलक्षित नहीं होता। अब भी यहाँ लोग चन्द्रभागा नदी में स्नान करने के लिए आते हैं। यह नदी सूर्य के मन्दिर के पाम बहती थी; अब इस नदी का कहीं नाम और निशान भी प्राप्त नहीं होता। लोग यहाँ स्नान करने के लिए माघ मसमी के दिन आते हैं और जहाँ नदी का मुहाना कहा जाता है, वहीं वे स्नान करते हैं। लोगों में इस बात की धारणा है कि इसी दिन स्नान करने से 'साम्ब' का कोढ़ दूर हो गया था। उसने इसी नदी में स्नान करके सूर्य की स्तुति की थी। उस दिन सूर्योदय से पूर्व लोग यहाँ स्नान करते हैं—उसके पश्चात् वे समुद्र के तट पर एकत्रित हो जाते हैं और सूर्य की पूजा और उपासना करते हैं। धीरे-धीरे समुद्र के उस पार से सूर्योदय होता है और उसकी किरणें मन्दिर के भग्नावशेषों पर पड़ती हैं। जब यह मन्दिर सूर्य की किरणों में स्नान करता है तो ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें एक नवीन जीवन उत्पन्न हो रहा है। यात्री इस महान् दृश्य को देखते हैं और पूजा करने के पश्चात् अपने-अपने घरों को वापस चले जाते हैं।

कोणार्क का अब यह वैभव आंशिक ही रह गया है—परन्तु यह समझा जाता है कि विश्व में इसका अपना ही एक विशिष्ट स्थान है। यह अद्वितीय है। कल्पना नहीं की जा सकती कि जब यह बना होगा, तब इसकी क्या शान रही होगी। कोणार्क के पतन के विषय में भी कई प्रकार की धारणाएँ प्रचलित हैं। कहा जाता है कि समुद्र में जो जहाज आते थे, वे आस-पास में टूट जाते थे—उनका कम्पाम मन्दिर के शक्तिशाली चुम्बक से खिंचा हुआ चला आता था जो कि मन्दिर के शिखर पर लगा हुआ था। एक बार कुछ मुसलमान नाविकों ने जो इस चुम्बक से परिचित थे—इस विनाशक चुम्बक को यहाँ से उखाड़ लिया और इसके परिणामस्वरूप मन्दिर की दीवारों को नुकसान पहुँचा और वह टूट कर गिर गई।

बहुत-से इतिहासकार यह कहते हैं कि काला पहाड़ के आक्रमण के कारण इस मन्दिर की यह अवस्था हुई। उड़ीसा के इतिहास में काला-पहाड़ के आक्रमण की ऐसी घटना है जो पीछे अपने बुरे चिन्ह छोड़ गई। पुरी के मुक्तिमण्डल ने उसे 'हिन्दू' मानने से

इनकार कर दिया था क्योंकि वह पहले मुसलमान था। इसका परिणाम यह हुआ कि उसे समस्त हिन्दुओं और उनके मन्दिरों से घृणा हो गई। सुलेमान की मुसलमान सेना की सहायता से उसने उड़ीसा पर आक्रमण कर दिया और उड़ीसा के राजा मुकुन्द देव की हत्या कर दी; मन्दिर के देवी-देवताओं को तोड़-फोड़ दिया और भारी गुम्बदों को नीचे गिरा दिया।

कुछ लोगों का विचार है कि बिजली के पतन और भूकम्प से यह मन्दिर गिर गया और इसकी यह स्थिति हो गई।

कई विचारक कहते हैं कि क्योंकि इस मन्दिर को रेत पर बनाया गया था और चूँकि यह गहरे पानी में पत्थर डाल कर मन्दिर की नींव डाली गई थी, इसलिए यह सम्भव है कि इसकी बुनियाद नीचे डूब गई हो और इस कारण मन्दिर गिर गया हो।

इस मन्दिर के पतन के सम्बन्ध में उड़ीसा में एक दन्तकथा प्रचलित है। कहते हैं कि एक अप्सरा थी, जिसका नाम मागर था। वह एक मुनि की पत्नी थी, जिसका नाम सुमन्यु था। इन दोनों को एक कन्या हुई। उसका नाम चन्द्रभागा था। वह युवती हुई। वह इतनी सुन्दर थी कि देवता भी उस पर लट्टू हो जाते थे। एक दिन वह बालुका पर खेल रही थी—उसी समय सूर्य वहाँ से अपने रथ पर गुजरे। उन्होंने जब इस अनुपम सुन्दरी को देखा तो वे मुग्ध हो गए। वे एक ब्राह्मण का रूप धारण कर उसके पाम आए और उससे प्रेम की भिन्ना माँगी। उसने इससे पूर्व मनुष्य का रूप ही नहीं देखा था और वह उसे देख कर भागी तथा समुद्र की लहरों में अन्तर्हित हो गई। चन्द्रभागा के पिता सुमन्यु को जब इन सब बातों का पता लगा तो उन्होंने सूर्य को शाप दिया और इस कारण जो मन्दिर सूर्य के नाम पर बनाया गया था—टूट-फूट गया। मन्दिर गिर गया। इसके चारों ओर जंगल था जो कि वन्य पशुओं का निवास-स्थान था। १६०१ में बंगाल के लैफ़्टिनेंट गवर्नर सर जार्ज वुडबर्न ने इस मन्दिर का पुनरुद्धार करवाया। रेत और पत्थरों के ढेर में से अनेक सुन्दर मूर्तियों को निकाला गया। मन्दिर का अगला भाग गिरने को था। इसलिए इसके चारों दरवाजों को बन्द कर दिया गया और उसके अन्दर रेत भर गई। अन्दर रेत ही रेत रहने के कारण मन्दिर के अन्दर के

भाग को देखा ही नहीं जा सकता ।

कोणार्क अब टूटी-फूटी अवस्था में है । उड़ीसा का गौरव अब एक दन्तकथा मात्र रह गया है । परन्तु अब भी यह एक महान् आश्चर्य की वस्तु है ।

॥

गुजराती भाषा में विदेशी भाषाओं के शब्द

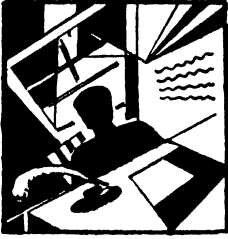
पिछले दिनों अहमदाबाद में उर्दू-कान्फ्रेंस हुई थी । इस कान्फ्रेंस में श्रीयुत छोडुभाई आर. नायक ने स्वागताध्यक्ष का भाषण दिया था । इस भाषण में उन्होंने अरबी और फ़ारसी के कुछ शब्दों पर प्रकाश डाला था जो कि अब गुजराती भाषा के अंग बन गए हैं । इस भाषण में से निम्न अंश दिया जा रहा है :

“...गुजरात ने भाषा और साहित्य के सम्बन्ध में अपनी दृष्टि को विस्तृत और विशाल रक्खा है । विदेशी लोग हमारे देश में अपने साथ कुछ ऐसी वस्तुएँ भी लाए जो इस देश में नहीं थीं—गुजराती में उन वस्तुओं को वही नाम दिया गया जो नाम कि विदेशियों की भाषा में प्रयुक्त होता था । पहले-पहल किसी विदेशी भाषा के शब्द किसी अन्य भाषा में इसी प्रकार प्रयुक्त होने लगते हैं । नई वस्तुएँ स्वयं नए-नए, अश्रुतपूर्व और अपरिचित शब्दों को लाती हैं परन्तु ज्यों-ज्यों वे वस्तुएँ प्रतिदिन की परिचित-सी हो जाती हैं, वे शब्द भी अपने बन जाते हैं । यह बात तो स्वाभाविक थी, क्योंकि ये वस्तुएँ बाहर से आई थीं और इस कारण इनको वही नाम दिया जाना स्वाभाविक था । इसके अतिरिक्त अरबी और फ़ारसी के जो शब्द और वाक्य इस प्रकार के थे जो कि गुजरात की जनता को पसन्द आए गए और उनकी ज़बान पर चढ़ गए—उन्हें भी गुजराती ने अपना लिया । जब कोई शब्द विदेशी होता हुआ भी अपना लिया जाता है तो वह स्वाभाविक रूप से अपने आप देसी बन जाता है । ऐसे शब्द गुजराती में तुर्की, पुर्तगाली, ग्रीक, अंग्रेज़ी, अरबी और फ़ारसी आदि अनेक भाषाओं से लिए गए । इस प्रकार के शब्द गुजराती में अल्प नहीं हैं । निज़ारत, सियामन, अदालत, महसूल, बाज़ार, फ़ौज आदि से सम्बन्ध रखने वाले बेशुमार अरबी और फ़ारसी शब्द गुजराती भाषा में अपना लिए गए हैं । उनमें कुछ ऐसे शब्द भी हैं जिनका

प्रयोग हमारे प्रतिदिन के पारिवारिक और सार्वजनिक जीवन में अन्यधिक रूप से प्रचलित हो गया है । उदाहरण के तौर पर ‘साहब’ शब्द को लीजिए । इस शब्द का प्रयोग गुजराती भाषा में सार्वजनिक रूप से प्रचलित हो गया है । ‘साहब’ शब्द का प्रयोग गुजराती में कदम-कदम पर होता है । गुजराती में ‘शास्त्री महोदय’ और ‘शास्त्री जी’ के स्थान पर ‘शास्त्री साहब’ और ‘पंडित जी’ को ‘पंडित साहब’ कहते हैं । हम ‘सेठ जी’ कहने की बजाय ‘सेठ साहब’ कहते हैं । एकमात्र ‘महाराजा’ को ही ‘महाराजा साहब’ नहीं कहा जाता ‘महारानी’ को भी ‘महारानी साहब’ कहा जाता है । मैडम को ‘मेम साहब’ कहा जाता था । सौराष्ट्र में ‘माँ’ को ‘माँ साहब’, ‘भाभी’ को ‘भाभी साहब’ और ‘मामी’ को ‘मामी साहब’ कहा जाता है । सौराष्ट्र में महाराजा शब्द के लिए ठाकुर या ठाकोर शब्द का व्यवहार होता है और ‘ठाकुर’ को भी ‘ठाकुर साहब’ कहा जाता है । महिलाओं के लिए ‘माहिबा’ शब्द का प्रयोग नहीं किया जाता—उनके साथ भी गुजराती में ‘साहब’ शब्द का ही प्रयोग किया जाता है । ‘अध्यापक’ को ‘मास्टर साहब’ और चिकित्सक को ‘डाक्टर साहब’ कहा जाता है । सूरत शहर में ‘पाताल हनुमान’ की मूर्ति है, उसे भी ‘पाताली साहब’ कहा जाता है । वसी शहर से दस मील दूर भीमपूर नामक ग्राम के ‘हनुमान’ को ‘भीमपूरिया साहब मेहरबान’ कहा जाता है । गुजरात में जैनी लोग अपने माधुओं को ‘महाराज साहब’ कहते हैं । इस प्रकार ‘साहब’ शब्द का प्रयोग गुजराती में बहुत अधिक प्रचलित हो गया है ।

गुजराती में इस प्रकार के अनेक अन्य शब्दों के उदाहरण दिए जा सकते हैं । सत्य तो यह है कि इस प्रकार विदेशी शब्दों को अपनाने से गुजराती भाषा अधिक पूर्ण और समृद्ध हो गई है । गुजराती में ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, कला, हस्तकौशल, तिजाराती मुआ-शरती, इल्तमासी, साहित्यिक, राजनैतिक, दार्शनिक और सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में इस प्रकार के अनेक शब्दों का गुजराती में व्यवहार होता है । ये शब्द जिस प्रकार उर्दू में व्यवहृत होते हैं—उसी प्रकार गुजराती में भी इनका प्रयोग किया जाता है ।.....”

§ गुजरात में पारसी लोग पारस्परिक अभिवादन और नमस्कार के लिए ‘साहब जी’ शब्द का प्रयोग करते हैं ।



सम्पादकीय

केन्द्रीय प्रशासन और हिन्दी का प्रशिक्षण

भारतवर्ष के केन्द्रीय प्रशासन की ओर से हिन्दी के ज्ञान के प्रचार और प्रसार के लिए एक योजना बनाई गई है, जिसके सम्बन्ध में भारतीय सरकार की ओर से समय-समय पर पत्रों में विज्ञप्तियाँ प्रकाशित होती रहती हैं। इन विज्ञप्तियों के द्वारा जनता को यह प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया जाता है कि केन्द्रीय प्रशासन हिन्दी के प्रति पूर्ण रूप से मतर्क और जागरूक है। केन्द्रीय प्रशासन की ओर से इस प्रकार की योजना बनाई गई है, जिसके द्वारा केन्द्रीय प्रशासन के आधीन कार्य करनेवाले अफसरों और अन्य कार्यकर्त्ताओं को हिन्दी का यथोचित ज्ञान हो जाए। इन अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं को यदि हिन्दी का यथोचित ज्ञान न हुआ तो वे, जब समय आएगा, तब किम प्रकार हिन्दी के द्वारा प्रशासन के कार्य का संचालन कर सकेंगे। केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय की विज्ञप्तियों को पढ़ने से यह ज्ञात होता है कि मन्त्रालय की योजना के अनुसार हिन्दी का कार्य प्रगति कर रहा है। इन विज्ञप्तियों में इस प्रकार की सूचना दी जाती है कि इतने सरकारी कार्यकर्त्ता इस वर्ष परीक्षाओं में बैठें और इतने परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए। केन्द्रीय मन्त्रालय की ओर से अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं को हिन्दी की इन परीक्षाओं में बैठने के योग्य बनाने के लिए कुछ प्राध्यापकों की नियुक्ति की गई है और वे ही हिन्दी के प्रशिक्षण का कार्य करते हैं। हम केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित इन विज्ञप्तियों को ध्यानपूर्वक पढ़ते रहे हैं। इन विज्ञप्तियों को इस प्रकार कुशलता से तैयार किया जाता है कि वस्तु-स्थिति का ठीक तरह और व्यवस्थित रूप से ज्ञान नहीं होता। इन विज्ञप्तियों को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय जितना इस बात को प्रदर्शित और विज्ञापित करना चाहता है कि वह केन्द्रीय प्रशासन के अधिकारियों और कार्यकर्त्ताओं में हिन्दी के ज्ञान और प्रसार के अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिए अपनी योजनाओं को किस प्रकार कुशलतापूर्वक और प्रगतिशीलता से क्रियान्वित कर

रहा है। उतना इस बात का ज्ञान नहीं होता कि केन्द्रीय सरकार के कितने अधिकारी और कार्यकर्त्ता इस योग्य हो गए हैं कि वे हिन्दी के द्वारा समय आने पर केन्द्रीय सरकार का समस्त कार्य कर सकेंगे। एक तो परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर निर्धारित डिग्री को प्राप्त कर लेना हिन्दी की आवश्यक योग्यता का प्रमाण नहीं हो सकता—दूसरा वस्तु-स्थिति कुछ इस प्रकार की प्रतीत होती है कि केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय ने जो योजना बनाई है, उसकी व्यवस्था और संचालन कुछ इस ढंग से हो रहा है कि अधिकारी और कार्यकर्त्ताओं में हिन्दी को सीखने के प्रति कुछ विशेष उत्साह अभिलक्षित नहीं होता। किमी योजना का महत्त्व एकमात्र इस बात से प्रतीत नहीं होता कि उस पर कितना व्यय किया जा रहा है, अपितु इससे कि उसके प्रति जनता, कार्यकर्त्ता और प्रशासन की कितनी गहरी दिलचस्पी और उनका उसके प्रति कितना अधिक उत्साह है। यदि उन केन्द्रों का माधारण-सा भी निरीक्षण किया जाए, जहाँ कि केन्द्रीय प्रशासन के द्वारा हिन्दी की ये कक्षाएँ चलाई जा रही हैं तो इस बात का स्पष्ट पता चल जाता है कि जिस प्रकार शिथिलता से यह कार्य किया जा रहा है, उमसे यह ज्ञात नहीं होता कि केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय इस बात की आवश्यकता को अनुभव कर रहा है कि संविधान द्वारा निश्चित अवधि में इस कार्य को पूरा करने का उम पर उत्तर-दायित्व है, अन्यथा निश्चित अवधि के अन्दर केन्द्रीय सरकार की कार्य भाषा हिन्दी किस प्रकार हो सकेगी। जो प्राध्यापक हिन्दी के प्रशिक्षण के लिए नियुक्त करके भेजे जाते हैं, जब वे इस प्रकार की वस्तु-स्थिति को देखते हैं तो यह स्वाभाविक ही है कि उनका अपने कार्य के प्रति उत्साह मन्द हो जाता है। अवस्थाएँ इस प्रकार की हैं, जिन पर वे किसी भी प्रकार काबू नहीं पा सकते। इन केन्द्रों में कार्य को देखने से यह पता चलता है कि केन्द्रीय प्रशासन के अधिकारी या कार्यकर्त्ता इस बात को अनुभव करते हैं कि निश्चित अवधि में हिन्दी की आवश्यक योग्यता को प्राप्त कर लेना उनका कर्तव्य है और या इसके लिए

केन्द्रीय प्रशासन जो व्यय कर रहा है, उसका पूर्ण रूप से उपयोग किया जा रहा है। संभवतः उन्हें पहले से ही यह विश्वास है कि निश्चित अवधि—ऐसी नहीं है कि जो निश्चित रह जाएगी और इसीलिए उनके प्रयत्नों में शिथिलता दिखाई देती है। केन्द्रीय प्रशासन का यह कर्तव्य है कि वह समय पर हिन्दी के प्रति उत्तरदायित्व अनुभव करने वाले अधिकारियों और लोक-सेवकों द्वारा इन केन्द्रों का सरकारी तौर पर निरीक्षण करवाए और इस सम्बन्ध में वे जो सुझाव दें, उन्हें अविलम्ब क्रियान्वित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

इन केन्द्रों में किम प्रकार हिन्दी के प्रशिक्षण की व्यवस्था है; कितने कार्यकर्ता और अधिकारी इन हिन्दी-कक्षाओं में नियमपूर्वक उपस्थित रहते हैं; उनके पाठ्यक्रम में किम प्रकार की पुस्तकें हैं और उनकी परीक्षाओं का संचालन किम प्रकार होता है—इस सम्बन्ध में हमें सूचनाएँ और पत्र प्राप्त होते रहते हैं। हमने इनमें से एक पत्र इस अंक के चिट्ठी-पत्रों के स्तम्भ में प्रकाशित किया है। हम इस पत्र की निम्न पंक्तियों की ओर केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय के अधिकारियों और हिन्दी की प्रगति में दिलचस्पी रखने वालों के ध्यान को आकर्षित करते हैं :

“.....भारत सरकार पर हिन्दी-विकास का जो उत्तरदायित्व है, उसे वह अच्छी तरह नहीं निभा रही है—यह तथ्य किसी से छुपा नहीं है। इस मन्थर गति से चल कर वह नियत समय के अन्दर हिन्दी को अपने लक्ष्य-स्थान पर पहुँचा सकेगी—इसमें सन्देह है। भारत के ३६ केन्द्रों में १५० अध्यापक केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की हिन्दी पढ़ा रहे हैं। पढ़ने-वालों को प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ नामक तीन परीक्षाएँ क्रमशः उत्तीर्ण करनी पड़ेंगी; अन्तिम परीक्षा हाई-स्कूल के समकक्ष है और द्वितीय मिडल स्कूल-परीक्षा के। इनके पाठ्यक्रम में कार्यालय-सम्बन्धी ज्ञान का भी समावेश है। इस स्कीम के अन्तर्गत हजारों कर्मचारी अध्ययन कर रहे हैं—ऐसा कहा जाता है।”

“ऊपर से देखने में यह कार्यक्रम बहुत अच्छा जान पड़ता है, परन्तु इसका संचालन कुशलतापूर्वक नहीं हो रहा है। व्यवहार-रूप में अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित हो रही हैं। हिन्दी का अध्ययन अनिवार्य नहीं किया गया है, परन्तु स्वेच्छा पर आधारित है। फलतः

कुछ कर्मचारी तो प्रारम्भ ही नहीं करते और कुछ प्रारम्भ कर बीच में ही विरत हो जाते हैं। कुछ उत्तरदायी अधिकारी इसे बोझ समझते हैं और प्रायः हिन्दी-कक्षा से अपने अधीनस्थ कर्मचारियों को बुलाते रहते हैं। कुछ विद्यार्थियों का बीच ही में स्थानान्तरण हो जाता है। परीक्षा में सम्मिलित होने के लिए उपस्थिति का नियम तो कड़ा है परन्तु अनुपस्थित होने वालों के साथ कोई कड़ाई नहीं बरती जाती।”

“अध्ययन का समय अपेक्षाकृत कम है। कर्मचारी सप्ताह में केवल तीन दिन एक-एक घण्टे के लिए पढ़ते हैं। सभी परीक्षाओं की अवधि ६ मास है। यदि नियमित रूप से व्याख्यान हों तो १०८ घण्टे हो सकते हैं किन्तु उनमें भी कभी-कभी छुट्टियाँ हो जाती हैं, जिनसे १०० से अधिक लेक्चर नहीं हो पाते।”

“यदि विद्यालयों में ३ घण्टे प्रतिदिन अध्ययन का समय मान लें तो इनकी सारी पढ़ाई, स्कूल की विषय-एक मास की पढ़ाई के बराबर है। ऐसी स्थिति में कोई भी सोच सकता है कि वर्षों का पाठ्यक्रम पूरने में कैसे समाप्त हो सकता है? विद्यार्थियों में कितने ही सज्जन ऐसे भी होते हैं जो घर पर पुस्तकें खोलना बच्चों के सामने अपना अपमान समझते हैं।

“सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि पाठ्य-पुस्तकों का निर्धारण क्रमिक, वैज्ञानिक और विवेकपूर्ण नहीं है। अक्षर-ज्ञान के पश्चात् एकदम कठिन पुस्तकें प्रारम्भ कर दी जाती हैं।...प्रथम पुस्तक “मरल हिन्दी” अवश्य कुछ मरल है परन्तु उसके प्रथम पाठ “विनती” में लिखा है :

‘विनती सुन लो हे भगवान् !

हम सब हैं बालक नादान’

“बड़े-बूढ़े आज़ीमों को नादान बालक कहना कहाँ तक उपयुक्त हो सकता है? शब्द भले ही सरल हों पर विषयों का निर्वाचन और कहने का ढंग प्रौढ़ों के अनुकूल होना चाहिए। पुस्तक में अनेक अशुद्धियाँ भी हैं, जिनसे प्रारम्भ ही भ्रमपूर्ण हो जाता है।...”

उपर्युक्त पत्र में यह स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि केन्द्रीय सरकार ने केन्द्रीय प्रशासन के कर्मचारियों के लिए हिन्दी की शिक्षा देने के लिए जो योजना बनाई है, वह कितनी अपूर्ण है और उसको जिन प्रकार क्रिया में परिणत किया जा रहा है, वह कहाँ तक उपयुक्त है?

जब योजना बनाई ही गई है और संविधान में हिन्दी के लिए अवधि निश्चित कर दी गई है तो यह सम्भव में नहीं आता कि केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने यह अधिकारियों और कर्मचारियों की इच्छा पर ही क्यों छोड़ दिया है कि वे चाहें तो हिन्दी सीखें और न चाहें तो न सीखें। संभवतः केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय के अधिकारियों का यह विचार है कि यदि वह केन्द्रीय सरकार के अधिकारी-वर्ग के लिए हिन्दी के सीखने को अनिवार्य कर देगी तो यह उन पर अवांछित रूप से हिन्दी का लादना होगा। यदि इस योजना को आगे बढ़ाना है तो केन्द्रीय प्रशासन के निर्धारित आयु के समस्त कर्मचारियों के लिए निश्चित समय में हिन्दी का सीखना अनिवार्य किया जाना आवश्यक है। यदि इसे स्वेच्छा पर छोड़ा गया तो इस प्रकार की योजना पर केन्द्रीय प्रशासन का बहुत-सा रूपया तो खर्च हो जाएगा परन्तु इसका लाभ अत्यन्त सीमित होगा। यदि उच्च पदाधिकारी हिन्दी के सीखने में उदासीनता प्रदर्शित करेंगे तो माधारण कर्मचारी हिन्दी को सीखने के प्रति किस प्रकार उत्साह अनुभव कर सकते हैं। इसके साथ-साथ हिन्दी के उपयुक्त पाठ्य-क्रम के निर्माण की ओर भी समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

इन परीक्षाओं और परीक्षार्थियों के अध्ययन आदि के सम्बन्ध में परीक्षकों की क्या सम्मति है—इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाला जाना चाहिए। यह सत्य है कि हिन्दी के ज्ञान के प्रसार के कार्य में अनेक कठिनाइयाँ हैं परन्तु इस प्रकार कार्य करने से इन कठिनाइयों की ओर भी अधिक अभिवृद्धि हो सकती है। यदि इसी प्रकार हिन्दी के प्रचार और विकास के कार्य को आगे बढ़ाया गया तो समय आने पर केन्द्रीय प्रशासन की ओर से भी यही आवाज उठाई जाएगी कि क्योंकि अभी प्रशासन के अधिकारियों और कर्मचारियों में हिन्दी का इतना ज्ञान नहीं है कि वे उसके द्वारा समस्त सरकारी काम-काज कर सकें—इसलिए अवधि को बढ़ाए जाने की आवश्यकता है। अभी तो इस सम्बन्ध में कुछ अ-हिन्दी भाषी राज्यों की ओर से इस बात को उठाया जा रहा है और उद्यो-उद्यो समय निकट आएगा वे अवधि को बढ़ाने के लिए अपना पूरा जोर लगाएँगे, परन्तु समय आने पर इस बात को भारतीय प्रशासन की ओर से भी उठाया जाएगा। क्या हम यह आशा

करें कि केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय इस पर विस्तार से प्रकाश डालेगा कि जिन गति से केन्द्रीय प्रशासन के अधिकारियों के हिन्दी के प्रशिक्षण का कार्य किया जा रहा है—उससे केन्द्रीय प्रशासन के समस्त अधिकारियों और कर्मचारियों को हिन्दी सीखने में कितना समय लगेगा और क्या उसकी सम्मति में इस सम्बन्ध में जो योजना बनाई गई है और जिस प्रकार उसे क्रियान्वित किया जा रहा है, वह निश्चित अवधि में हिन्दी के प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त और पर्याप्त हो सकेगी ?

अंग्रेजी का इन्स्टिट्यूट

अभी पिछले दिनों संसद् में केन्द्रीय प्रशासन की ओर से इस बात की घोषणा की गई कि भारतवर्ष में अंग्रेजी के प्रशिक्षण को उन्नत करने के लिए हैदराबाद में अंग्रेजी के एक इन्स्टिट्यूट को खोला जा रहा है। इस इन्स्टिट्यूट पर ४० लाख रूपया व्यय किया जाएगा भारतवर्ष में अनेक विश्वविद्यालय हैं—उनमें अंग्रेजी को समुन्नत करने का प्रयत्न किया जा सकता था—परन्तु क्योंकि भारतवर्ष के समस्त विश्वविद्यालयों और शिक्षण-संस्थाओं में यह अनुभव किया जा रहा है कि स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् देश भर में अंग्रेजी के ज्ञान का मानक बहुत अधिक गिर गया है, अतः इसके लिए अब अलग एक विशिष्ट संस्था को खेलने की ही आवश्यकता है। इस इन्स्टिट्यूट में अंग्रेजी के प्रशिक्षण का विशेष पाठ्यक्रम रखा जाएगा। हमें संदेह है कि इस विशिष्ट संस्था के द्वारा भी जिस पर कि ४० लाख रूपया व्यय किया जाएगा, अब इस देश में अंग्रेजी के मानक को ऊपर उठाया जा सकेगा। अंग्रेजी के प्रभुत्व के समय एक-मात्र अंग्रेजी के शिक्षण पर ही समस्त शिक्षा आधारित थी और उस समय भी अंग्रेजी का पूर्ण और विशिष्ट ज्ञान कितने व्यक्ति प्राप्त कर सकते थे। अब जब कि प्रारम्भ में समस्त शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी को नहीं बनाया जा सकता और मातृभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के ज्ञान को भी प्राप्त करना आवश्यक सम्झा जा रहा है, तो तब अंग्रेजी के ज्ञान के मानक में गिरावट आनी अनिवार्य है। भारतीय भाषाओं के ज्ञान को समुन्नत करने के मानक का प्रश्न तो सम्भवतः इसलिए नहीं उठता क्योंकि वे स्वयं ही उन्नत नहीं हैं। अंग्रेजी एक उन्नत भाषा है—इसलिए उसके ज्ञान के मानक तो उच्च होना ही चाहिए।

